Regd. No. 58414/94

स्वामी रामानन्द जी द्वारा संचालित

हमारी साधना

त्रैमासिक

वर्ष 28 • अंक 2 • अप्रैल-जून 2021

मूल्य रु. 25/-

आत्मविश्वासी विफलताओं को ही सीढ़ियाँ बनाकर आगे बढ़ता चला जायेगा। विफलताएँ उसकी पथ-प्रदर्शिका होंगी। उसका उत्साह दिन-प्रतिदिन दुगना होगा। जो व्यक्ति अपने से अधीर हो जाता है, जो आत्मग्लानि की ज्वाला प्रज्ज्वलित कर लेता है, वह अध्यात्म पथ पर गिरता है ठोकर खाकर भाग खड़ा होता है। इससे बचना होगा। (आध्यात्मिक साधना खण्ड-1, पृष्ठ 36)

करुणामयी सुमित्रा माँ

हमारी साधना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।
न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गम् न पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानाम्, प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

वर्ष : 28 अप्रैल-जून 2021 अंक : 2

भजन

हिय धरु हरि चरनन को ध्यान।
मंगल भवन दानि रिधि सिधि के बरनत बेद पुरान।
सहजहिं सुलभ करत अति दुरलभ अनुपम पद निरबान॥
अस सुख खानि सेउ पद पंकज उर धरि प्रीत महान।
परसि पखारि पूजि अति हित सों चरनोदक करु पान॥
पंख बिना पंछी को जीवन जल बिनु जस जल जान।
तस हरि चरन सरन बिनु नरतन निपट बादि तैं मान॥
अस अवसर पुनि हाथ न ऐहै हैं यह बचन प्रमान।
रामसरन सिख मानु छांड़ि छल जौं चाहसि कल्यान॥

भजन संख्या 13 - स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम,
संन्यास रोड, कनखल,
हरिद्वार-249408
फोनः 01334-240058
मोबाइलः 08273494285

सम्पादिका
श्रीमती रमन सेखड़ी
995, शिवाजी स्ट्रीट,
आर्य समाज रोड
करोल बाग,
नई दिल्ली-110005
मोबाइलः 09711499298

उप-सम्पादक
श्री रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
1018, महागुन
मैंशन-1, इन्दिरापुरम,
गाजियाबाद-201014
ई-मेलः rcgupta1018@gmail.com
मोबाइलः 09818385001

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	रचयिता	पृ.सं.
1.	चित्र – करुणामयी सुमित्रा माँ		2
2.	भजन	स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'	3
3.	सम्पादकीय		5-6
4.	प्रभु ! तेरे चरणों में	स्व. श्री बाबूराम जी	7
5.	निराकार से होकर साकार	श्री विजय भण्डारी जी	7
6.	गीता विमर्श – श्रीमद्भगवद्गीता चतुर्थोऽध्याय (गतांक से आगे) – स्वामी रामानन्द जी		8-11
7.	श्री गुरुदेव के प्रवचन – 16 व 17 जून, 1949	श्री जयनारायण पारीक जी	12-13
8.	साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक का विवरण		14
9.	कोरोना काल की गतिविधियाँ		15
10.	दिगोली शिविर-2021 – रिपोर्ट	अरुणा पाण्डे	16
11.	श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर – सूचना		16
12.	श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2021 (14-21 अप्रैल 2021) – रिपोर्ट व प्रवचन सार		17-30
13.	सुख	'जीवन विकास – एक दृष्टि' से उद्धृत	31-32
14.	दानदाताओं की सूची		33
15.	आन्तर योग तथा इसका रहस्य	'आध्यात्मिक साधन, खण्ड-2' पर आधारित	34-35
16.	बूँद बूँद विचार	श्री वाचस्पति उपाध्याय जी	36-37
17.	माँ सूक्ष्म जप और नित्य जप में क्या अन्तर है	सुश्री मीरा गुप्ता जी	37
18.	साधना का उद्देश्य	श्री जयनारायण पारीक जी	38-39
19.	शोक समाचार		39
20.	पूज्य स्वामी मुक्तानन्द जी के प्रति श्रद्धांजलि		40
21.	पूज्य श्रीमती सावित्री तिवारी जी के प्रति श्रद्धांजलि	उर्मिला सिंह	41
22.	पूज्य श्री नारायण सेवक वाजपेयी जी के प्रति श्रद्धांजलि		42
23.	दिगोली शिविर-2021 – चित्र		43
24.	श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2021 (14 से 21 अप्रैल 2021) – चित्र		44

Printed and Published by Shri Dinesh Bahl for and on behalf of Swami Ramanand Sadhna Pariwar, Sadhna Dham, Sanyasa Road, KANKHAL-Haridwar (Uttarakhand) and printed at Rakmo Press Pvt. Ltd., C-59, Okhla Industrial Area Phase-I, New Delhi-110020.

सम्पादकीय

भगवान की लीला भी अपरम्पार है। अभी हम कोरोना महामारी के पहले दौर से उबर भी न पाये थे कि उससे भी अधिक संहारक दौर ने चुपके से आ दबोचा। इस दौर में मृत्यु दर पहले दौर से कहीं अधिक है। सब ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है। सारी गतिविधियाँ ठप्प हो गई हैं, रास्ते सुनसान हैं, लोग अपने-अपने घरों में बन्द रहने को विवश हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो परमपिता परमेश्वर से कुछ भी छिपा नहीं है क्योंकि वह सबका नियन्ता है और सब कुछ प्रकृति के नियमानुसार हो रहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने सच ही तो कहा है –

गगन समीर अनल जल धरनी।
इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥

ये सब तो प्रभु की निर्धारित की हुई मर्यादा का पालन करते हैं। प्रभु केवल दृष्टा हैं। और मर्यादा यह है कि जब-जब सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ता है, प्रकृति उसे संवारने का प्रयत्न करती है, भले ही उसमें किसी को सुख हो या दु:ख।

इतिहास साक्षी है कि जब भी मानव ने मानवता का गला घोंटा है, उसको उसका परिणाम भी भोगना पड़ा है। विडम्बना तो यह है कि हम लोग इतने असंवेदनशील हो गये हैं कि चोट खाकर भी अपनी गलतियाँ नहीं सुधारते हैं।

हम में से कितने ही लोग प्रकृति का निर्दयतापूर्वक दोहन करने में लगे हुए हैं, उस प्रकृति का जो माता के समान हमारा पालन-पोषण करती है। हमने जीवनदाता आक्सीजन देने वाले जंगलों को काट-काट कर अपनी तिजोरियां भरीं, नदियों के जल में गन्द बहाकर प्रदूषित किया, वायु में विषैली गैस निष्कासित कर उसे प्रदूषित किया, पृथ्वी से जल का शोषण कर उसे बंजर बना दिया।

जो समाज हमारी जीवन सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है उसी का जीवन लेने के लिये हम आक्सीजन का संग्रह करके एक एक सांस के लिये तरसाते हैं, कालाबाजारी करते हैं, नकली औषधियाँ बनाकर गरीबों की हत्या करते हैं। लाशों को शमशान पहुँचाने के लिये एम्बुलेंस के कई गुणा दाम लेते हैं, वह भी ऐसे असहाय लोगों से जो पहले ही इलाज कराने में अपना सब कुछ खो चुके होते हैं।

बहुत पीड़ा होती है यह देख कर कि हमने किस कद्र मानवता का उपहास उड़ाया है जबकि हम उस देश के वासी हैं जहाँ भगवान कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया था। लेकिन अफसोस, गीता के उपदेशों का पालन करना तो दूर, हम तो उसको पढ़ने या सुनने की आवश्यकता

भी नहीं समझते। अथवा यूँ कहें कि अपने स्वार्थ की पूर्ति और विषय भोग के लिये दौलत जुटाने में हम इतने व्यस्त हैं कि आत्म कल्याण और समाज कल्याण की बात सोचने तक की फुर्सत नहीं है। हम तो बस भगवान को और सरकार को दोष देकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। फिर प्रकृति को तो अपने **'जैसी करनी वैसी भरनी'** वाले नियम का पालन करना ही है।

यह तो हुई सृष्टि के नियम की बात। इसी नियम को ध्यान में रखते हुए साधना परिवार अपनी गतिविधियों में लगा रहा। हम साधना परिवार के सदस्य भाग्यशाली हैं कि हमारी बागडोर गुरुदेव महाराज के हाथ में है जिसके कारण हम अपने कर्तव्य के प्रति सजग हैं, प्रतिदिन सत्संग करते हैं और कोई अनैतिक अथवा असामाजिक कार्य नहीं करते हैं। गुरुदेव की शिक्षाओं का सदैव स्मरण रखते हैं जिनके अनुसार साधक प्रत्येक परिस्थिति को माँ का प्रसाद समझकर सहर्ष स्वीकार करता है। वह जानता है कि सभी घटनायें मानव के विकास में सहायक हैं। वह यह भी जानता है कि मृत्यु का परिणाम पुनर्जन्म है; यह जीवन का अन्त नहीं है, केवल एक पटाक्षेप है, अतः इसका शोक नहीं करना है।

साधना परिवार के तथा उन के परिवार के जो भी सदस्य इस नश्वर देह को त्याग कर गये हैं उन सभी दिवंगत आत्माओं को अपने श्रीचरणों में स्थान देने तथा परिवार जनों को दुःख सहने की शक्ति प्रदान करने के लिये सभी साधकों ने गुरु महाराज से प्रार्थना की।

हर्ष का विषय तो यह है कि **'निर्वाण दिवस शिविर'** का आयोजन निष्ठावान साधक श्री पुरन्दर तिवारी जी तथा उनके सहयोगियों के प्रयास से घर बैठे ही पहले से भी प्रभावी ढंग से किया गया जिसमें सभी साधक भाई बहनों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। सारे कार्य उसी प्रकार सम्पन्न किये गये जैसे साधना धाम में किये जाते हैं।

साधकों के जो प्रवचन-सार लिखित रूप में प्राप्त हुए वे यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

आइये, इस अवसर का लाभ उठाते हुए हम सब भजन, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय, नाम जप में अपने समय का अधिक से अधिक सदुपयोग करें।

पत्रिका में प्रकाशनार्थ भजन, लेख, संस्मरण आदि रचनायें पत्रिका के मुख्य सम्पादक अथवा उपसम्पादक के पते पर प्रेषित करें। लेख आदि पूज्य गुरुदेव की साधना पद्धति से मेल खाते हुए होने चाहिये। लेख E-mail अथवा WhatsApp के माध्यम से भी भेजे जा सकते हैं।

प्रभु! तेरे चरणों में

प्रभु! तेरे चरणों में सिर चाहता था झुकाना लगन से, झुका मैं न पाया।
हृदय में बिठाना तुझे चाहता था, जगत को वहाँ से हटा मैं न पाया॥
रहे मोह, मद, क्रोध यूँ मन को जकड़े, छुड़ाता रहा पर छुड़ा मैं न पाया।
कहाँ तेरा अर्चन, कहाँ तेरा पूजन, हृदय में तुझे जब बिठा मैं न पाया॥
प्रभो,.....

विनय गज की सुनके तुरत उठके धाये, मगर उस तरह से बुला मैं न पाया।
थे दौड़े रुदन पर द्रुपद की सुता के, मगर अश्रु वैसे बहा मैं न पाया॥
कहीं बेर जूठे, कहीं शाक खाया, मगर भाव से उसे खिला मैं न पाया।
बनी नारि सुन्दर शिला चरण रज से, वह निज शीश धूली चढ़ा मैं न पाया॥
प्रभो,.....

निभे कैसे नाता तेरे पद कमल का, जगत के ही नाते निभा मैं न पाया।
तेरा प्रेम चाहा मगर मोह जग का, मिटाता रहा पर मिटा मैं न पाया॥
तेरे गीत गाने को चाहा किया मन, मगर भाव अपने जगा मैं न पाया।
सदा हर जगह तू, हर वस्तु में है, पता 'राम' फिर भी लगा मैं न पाया॥
प्रभो,.....

- स्वर्गीय श्री बाबूराम जी

निराकार से होकर साकार

हे सद्गुरु निराकार से होकर साकार
दिया निश्छल प्रेम का साधना मार्ग
सेवा समर्पण को निज जीवन में उतार
तुम बन गये हम सबके खेवनहार।

छाप है गुरुवर इतनी गहरी तुम्हारी
आत्मा पर है उकेरी गई छवि तुम्हारी
तुम से अलग नहीं है अस्तित्व हमारा
आप ही हो परमात्मा अंतरात्मा हमारा।

आप ही हो भँवर आप ही कश्ती हमारी
आप से ही बनती सुधरती बंदगी हमारी
आपका ही साथ पाकर मार्ग चल रहे हम
आप ही से सध पा रही साधना हमारी।

जानते हैं हम हाथ छूटेगा नहीं आपका
अनवरत मिलता रहेगा हमें साथ आपका
निर्देशन मिलता रहेगा हमें सदा आपका
निराकार से भी होता रहेगा दर्शन आपका।

श्री सद्गुरुदेव तुम्हारी जय जय जय होवे
परमचैतन्य की गोदी में हमारा आश्रय होवे॥

- श्री विजयेन्द्र (विजय) भण्डारी जी

गीता विमर्श

श्रीमद्भगवद्गीता चतुर्थोऽध्याय

(गतांक से आगे)

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥34॥

'तू उस ज्ञान को प्रणिपात से, परिप्रश्न और सेवा से जान। तत्त्वदर्शी ज्ञानी लोग तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे'॥34॥

क्या यह कोई न्यारा ज्ञान है जिसकी प्रभु चर्चा कर रहे हैं? या वही है जो कर्म-ब्रह्मार्पण-योगी को सिद्धि में प्राप्त होता है?

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥35॥

'हे पाण्डव! जिसे जानकर तू इस प्रकार से फिर मोह को प्राप्त नहीं होगा। जिस ज्ञान से तू समूचे रूप से भूतों को अपने में देखेगा और मुझ में देखेगा'॥35॥

कर्म-ब्रह्मार्पण-योग की सिद्धि तो सभी कुछ ब्रह्ममय कर देती है। उसके लिये 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अनुभव में आ जाता है। यह ज्ञान है जिससे व्यक्ति सभी भूतों को अपने में और प्रभु में देखता है। आगे छठे अध्याय में फिर हमें ज्ञान के स्वरूप का परिचय मिलता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥6/29॥

और यह ज्ञान समदर्शन है। समदर्शी योगी परमयोगी है। (6/12)

जो ब्रह्मदर्शी है, जिसके लिये सभी ब्रह्ममय है, ब्रह्म ही है, वह तो समदर्शी है ही। इसमें कोई सन्देह की गुंजाइश नहीं। जिसके लिये सभी ब्रह्म हो गया है वह तो सम देखता ही है। उसमें विषमता की सम्भावना ही नहीं।

और ऊपर 35वें श्लोक में भी यही बात कही गई है अर्थात् सभी भूतों को आत्मा में देखेगा और मुझ में देखेगा। कैसे? आत्मा को प्रभु में देखने से सभी भूत भी तो प्रभु में ही दीखेंगे। सभी कुछ ब्रह्म में अर्थात् ब्रह्ममय दीखेगा, सभी कोई उसमें दीखेंगे। तू अपने को भी और इन सभी को मुझ में देखेगा।

वह ज्ञान तो एक ही है। जो ज्ञान कर्म-ब्रह्मार्पण-योगी को प्राप्त होता है और जिसकी यहाँ चर्चा है वह अलग ज्ञान नहीं है। वह है बुद्धि से परे, अहं से परे की जागृत चेतना। यह बौद्धिक ज्ञान तो है नहीं, यह ज्ञान तो दर्शन है, यह ज्ञान अनुभूति है, यह ज्ञान प्रभु को पाना है। इसके विषय में इसी अध्याय में आगे चलकर भगवान् तो स्वयं कहते हैं कि योग में संसिद्ध हुआ व्यक्ति समय पाकर इस ज्ञान को अपने में प्राप्त कर लेता है। (38) अतः यह ज्ञान कोई न्यारा ज्ञान नहीं है। वही है जो सिद्ध कर्मयोगी का सम्यक् बोध है। (24)

सभी कर्म इसी ज्ञान में आकर समाप्त हो जाते हैं। इस ज्ञानरूपी सिद्धि के प्राप्त होने से कर्मत्व की समाप्ति हो जाती है। कर्म नहीं रहता, वह पूर्णरूपेण अकर्म हो जाता है।

परन्तु उस ज्ञान को पाने के लिये अर्जुन को आदेश कैसा? और क्या केवलमात्र उपदेश का श्रवण करने से अर्जुन उस स्थिति को लाभ कर सकता था? क्या इस ज्ञान का कर्म-ब्रह्मार्पणयोग की साधना में भी कोई स्थान है? इसका इतना ही स्थान दिखाई पड़ता है कि यह साधक का लक्ष्य है। लक्ष्य का भली प्रकार से बोध होने से व्यक्ति को दिशा भ्रम नहीं होता। उसे विश्वास होता है अपने ठीक चलने

का। जो ज्ञान बुद्धि के द्वारा प्राप्त हो सकता है वह तो साधनरूपी ज्ञान ही है। उसे निष्ठा कहा जाता है। हम भगवान् के विषय में सुनते हैं, सुनकर मनन करते हैं। एक भावना जगती है। फिर एक निष्ठा बन जाती है। जीवन लगाया जा सकता है प्रभु के चरणों में। इसी प्रकार से इस ज्ञान को सुनने तथा मनन करने से व्यक्ति में कर्म को भगवान् के प्रति समर्पण करने की निष्ठा जगती है। वह अज्ञान जो उसके भीतर भ्रम जागृत करता था वह दूर हो सकता है और व्यक्ति दृढ़ता से अग्रसर हो सकता है इस योग के मार्ग पर। यही इस ज्ञान की उपयोगिता है। यह बात 35वें श्लोक में कही गई है।

कैसे दूर हो जाता है वह भ्रम? इस ज्ञान के लाभ से तुम्हें भूतों में जो परस्पर वैविध्य दीखता था, जो मौलिक अनेकत्व की प्रतीति होती थी, जो जन्म-मरण को बहुत बड़ा दिखाती थी, सो मिट जायेगी। सभी भूत आत्मा में दीखेंगे। तुम अपने को किसी से अलग प्रतीत ही न कर पाओगे। मानो सभी तो तुम में निवास करते हैं। तुम से बाहर कोई भी नहीं। फिर जीवन तथा मरण, संयोग तथा वियोग, हानि और लाभ यह सभी तो खेल रह जावेंगे। यह सभी और अपने आप को भी तुम मुझ में – भगवान् में – देखने लगोगे। यह सभी प्रभु-मय हो जावेगा। फिर मैं ही मैं रह जाऊँगा। मैं ही जीवन होऊँगा तेरे लिये और मैं ही मृत्यु भी। सुख-दु:ख, हानि और लाभ मैं ही हो जाऊँगा। फिर इस प्रकार के मोह के लिये गुंजाइश कैसे? भ्रम का मूल जो अविद्या है, जो मन्दबुद्धि की जननी है वह इस अवस्था में, इस ज्ञान की ज्योति के जग जाने से समाप्त हो जाती है।

वह जो पर्दा था बीच में अब न रहा
न रहा पर्दे में अब वह पर्दानशीं।

'वह जो बीच में पर्दा था वह हट गया और उस पर्दे में छिपा हुआ जो था प्रकट हो गया'। यह गीता का स्वत:सिद्ध अद्वैत है। इसे सिद्ध करने के लिये तर्क के आश्रय की आवश्यकता नहीं, यह तो सत्य है ही। प्रभु का कथन है। कर्म ही योगसिद्धि है। यह अनुभवगम्य है।

इस बात को बुद्धि से समझा तो जा सकता है। यदि समझ में आ जाये तो बुद्धि में होने वाली परेशानी का इलाज हो जाता है, भले ही वह टिकाऊ न हो। वह टिकाऊ तो उस अवस्था को स्वयं भीतर पा लेने से ही हो सकता है।

अपने में देखना और प्रभु में देखना थोड़ा अन्तर रखता है। आत्मभाव के खिलने से व्यक्ति को सभी कुछ उसी में है ऐसी अनुभूति होने लगती है। अपने से किसी को अलग प्रतीत नहीं करता। इसके उपरान्त जगती है दूसरी अनुभूति। अपने से परे भागवती सत्ता की प्रतीति होती है। उसमें आपा भी लीन हो जाता है और सारी सृष्टि भी। प्रभु ही रह जाते हैं। वह परम अद्वैत है, प्रेम का अद्वैत है। वह अनन्यभक्ति से लभ्य है। इसे ही तो गीता प्रवेश कहती है। व्यक्ति उसमें समा जाता है। उसका व्यक्तित्व भी उसी का रूप हो जाता है, प्रभु के व्यक्तित्व में समा जाता है। यह अद्वैत सभी कुछ को मिटाता नहीं, पर मिटाये बिना ही ऐसा अखण्ड अद्वैत-भाव प्रकट करता है कि दूसरा रहता ही नहीं, रह सकता ही नहीं। प्रवेश से व्यक्तित्व का विनाश नहीं होता, व्यक्तित्व रहते हुए भी नहीं रह जाता। अलौकिक है वह अवस्था। जैसे कर्म रहते हुए भी कर्म नहीं रहता, ठीक ऐसे ही व्यक्ति रहते हुए भी नहीं रहता और नहीं रहते हुए भी रहता है।

यह ज्ञान है जिस ज्ञान से मोह का विनाश हो जाता है। गीता इसे सिद्ध करने के लिये माया का आश्रय नहीं लेती है, ऐसा समझ में आता है।

तो यह ज्ञान प्राप्त कैसे हो? भगवान् रास्ता बताते

हैं (34)। तत्त्वदर्शी ज्ञानी तुझे उपदेश करेंगे इस ज्ञान का। ज्ञानी, जो ज्ञानवान् है। जिसने सुना है, सोचा है और समझा है। गीता के 7वें अध्याय (16,17,18) का ज्ञानी इसी कोटि का है, ऐसा ज्ञानी साधक है। अनेक जन्मों की साधना, निष्ठायुक्त कर्मयोग के द्वारा वह प्रभु को प्राप्त करता है (7/19)। उसे अभी दूसरे को उपदेश देने की सामर्थ्य नहीं है।

जो तत्त्वदर्शी हो गया है वह ज्ञानी ही उपदेष्टा बनता है। तत्त्व-दर्शन है तत्त्व को स्वयं प्रत्यक्ष करना। जो वास्तविकता है जब हम उसे स्वयं अनुभव कर लेते हैं, जब ज्ञान बुद्धि तक ही सीमित नहीं रहता, किन्तु हमारी आत्मा की अनुभूति हो जाता है, जब वह तर्क पर आश्रित बोध नहीं होता तथा उससे परे की चेतना की जागृति होती है, तब होता है तत्त्वदर्शन। इसे ही साक्षात्कार कहते हैं – ऐसे ही लोगों को साक्षात्कृत-धर्मा कहा जाता है। जिसने सिद्धि प्राप्त की है वह तत्त्वदर्शी है। अर्थात् जो साधना के द्वारा भीतर पूरी तरह से जग चुका है।

तत्त्व-दर्शन साधना की सिद्धि है। साधनारूपी वृक्ष का पका हुआ फल है। यह क्षणिक लाभ नहीं, यह आकर जाने वाला नहीं। यह वह सहज स्थिति है जो जगी हुई, बढ़ते-बढ़ते व्यक्ति को पूरा लपेट लेती है। दूसरी अहमाश्रित चेतना इसमें लुप्त हो जाती है। यह विकास-क्रम की एक ऊँची श्रेणी है।

जो तत्त्वदर्शी ज्ञानी हैं वे उपदेश करेंगे।

कैसे प्राप्त होता है उपदेश? तीन साधन हैं – प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा। प्रणिपात है खूब झुक जाना। पड़ जाना पांवों में। जिसे कहते हैं द्वार पड़ी हूँ – आश्रित हूँ, शरण में आई हूँ। विनय तो इसका बहुत पतला सा रूप प्रतीत होता है। प्रणिपात ऐसा विनम्र आग्रह होता है जो हिला देता है गुरु का दिल और वह स्वीकार कर लेता है शिष्य को। इस स्वीकृति के बिना तो कुछ प्राप्त ही नहीं होता।

पुराना तरीका यही था। प्रार्थना करनी होती थी स्वीकृति के लिये। आज भी करनी होती है। जब तक व्यक्ति को झुकना नहीं आता वह क्या सीख सकेगा। अध्यापक तो हमारे नौकर होते हैं, हमने मास्टर लगाया है, इस भावना से तो अध्यात्म के क्षेत्र में हाथ कुछ नहीं लगता। पोथी पढ़ने से ही यह ज्ञान प्राप्त होता तो भगवान् इतनी मांग न करते शिष्य से। पोथी का ज्ञान बुद्धि को उलझाता है। वह तर्क का तन्तु खिंचता ही चला जाता है और व्यक्ति एकनिष्ठ नहीं हो पाता। दूसरे, वह बुद्धि के द्वारा स्वयमुपार्जित ज्ञान तो बुद्धि के स्तर का ही खिलौना होता है। वह वाचा वेदान्त होता है जो जीवन की निष्ठा नहीं, बुद्धि का 'निश्चय' होकर ही रह जाता है। यदि बुद्धि से परे की जागृति का बीज पड़ जाये, तब जग सकती है निष्ठा, तब मिल सकता है साधन। तब किसी दिन साधन का वृक्ष फलित हो पाता है।

यदि पोथी का ज्ञान ही तुष्टि देता तो क्या ज्ञानी की वाणी भी काफी न होती। भगवान् तो तत्त्वदर्शी ज्ञानी से उपदेश ग्रहण करने का निर्देश करते हैं।

अतः आवश्यक है प्रणिपात – पूरी तरह से अपने मान को मिटा देना गुरु के चरणों में। हमारा अभिमान ही हमारी ग्रहणशीलता का दुश्मन होता है। 'मैं जानता हूँ, मैं उससे अधिक समझता हूँ। मेरा अनुभव तो बहुत विशाल है, मेरी जानकारी कहीं बढ़ी चढ़ी है। हाँ, वह आध्यात्मिक विषय को अधिक जानते हैं।' ऐसा सोचने से भी काम नहीं चलता है। पथ-प्रदर्शक को समग्ररूप से स्वीकार करना होता है? वह हो पाता है प्रणिपात से। बाहर का झुकना भी कोई झुकना होता है? वह तो ड्रामा हो जाता है बहुत बार। झुकने में भी झुकने का अभिमान होता है। भीतर का झुकना क्या होता है, यह तो अनुभवी ही जानता है।

बिना इसके ऊपर से स्वीकृति होने पर भी भीतर से स्वीकृति नहीं होती, शिष्य को भ्रम होता है कि वह स्वीकृति है।

क्यों है प्रणिपात की इतनी प्रधानता? क्योंकि जो हम चाहते हैं वह बुद्धि की चीज नहीं। वह बिना उसे रखने वाले व्यक्ति के कहीं मिल नहीं सकती। उसका पेटेण्ट निकाला ही नहीं जा सकता और उसके बिना भीतर की ऊँची सम्भावनाओं का क्षेत्र नहीं खुलता। वह न दिखने पर भी सूक्ष्म देन होती है। प्रणिपात हममें उसे ग्रहण करने की योग्यता जगाता है। गड्ढा खोद देता है जिसमें पौधा लगाया जा सके।

दूसरा काम – परिप्रश्न। प्रश्न सवाल होता है, परिप्रश्न होता है – सवाल के उत्तर पर जो सवाल होता है। भीतर कोई सन्देह छिपाकर नहीं रखने चाहिएँ। जो भी तर्क-वितर्क-कुतर्क जगते हैं उन सबकी निवृत्ति कर लेनी चाहिये। जब हम अपने को बड़ा समझते हैं, तो पूछने में डर लगता है। 'शायद मुझे मूर्ख समझेंगे। मेरा प्रभाव जाता रहेगा।' ऐसा सोचने वाला अभी झुका ही नहीं है वास्तव में। कभी संकोच से अथवा भय से भी मुँह नहीं खुलता। वह भी मिटाना ही चाहिये। मिटाये बिना काम न चलेगा।

इसका अर्थ यह नहीं कि व्यर्थ का आग्रह हो। परिप्रश्न में समझने की इच्छा प्रधान होनी चाहिये, तार्किकता नहीं। बिना विनीत जिज्ञासा भाव के तो व्यक्ति व्यर्थ में अपना तथा दूसरे का समय ही खोता है। जितना जानना आवश्यक है उतने से सन्तोष भी करना चाहिए क्योंकि सभी कुछ तो एक दम से जाना नहीं जा सकता। साधना स्वयं समझ को खिला देती है।

तीसरी है – सेवा। पुराने समय में कुछ सीखने के लिये गुरुगृह में रहना होता था। गुरु की सेवासुश्रूषा करनी होती थी। सेवा करते-करते जब व्यक्ति तैयार हो जाता था तभी उसे उपदेश दिया जाता था। पास रहने से एक तो गुरु उसका भली प्रकार निरीक्षण कर सकता था, उसके जीवन को नये ढांचे में ढाल सकता था। धीरे-धीरे अपनी समीपता के प्रभाव से ऊँचे वातावरण से वह निर्मल हो जाता था, ग्रहणशील हो जाता था। भीतर वाला भी श्रद्धा से झुक जाता था। तब उसको दिया उपदेश जल्दी ही फलित होता था। तब वह स्वतन्त्ररूप से साधना करने के योग्य हो जाता था। गुरुगृह से उसे छुट्टी मिल जाती थी।

यह बहुत उच्चकोटि का उपाय है इसमें कोई सन्देह नहीं। यह सहज सत्संग का तरीका है। सत्संग वाणी से ही तो नहीं होता है। जो वास्तव में महत्त्व की बात है वह है समीपता और ग्रहणशीलता। सेवा के बहाने दीर्घकाल तक सत्संग हो सकता था।

ज्ञान तो जीवन के प्रति दृष्टिकोण को ही बदलना है। क्रमशः जीवन को बदल डालना है भीतर तथा बाहर।

इतना हमें और कहना है कि गीता का ज्ञान वह कोरा अद्वैत नहीं है जिसमें भक्ति के लिये गुंजाइश नहीं। वह अनिर्वचनीयता की अथवा खण्डन की परम्परा भी नहीं प्रतीत होती। वह तो जीता जागता ब्रह्म का, पुरुषोत्तम का, सगुण-निर्गुण भगवान् का बोध है जो भक्ति का और कर्म का आश्रय बनता है। वही तो कर्म-ब्रह्मार्पण-योग का आधार है। वही अवतारोपासना वालों को भी प्राप्त होता है (10/9-11)।

उस ज्ञान की महिमा का वर्णन किया है आगामी श्लोकों में जो इतनी मेहनत से मिलता है, वह है भी मूल्यवान्।

(क्रमशः)

❖ ❖ ❖

श्री गुरुदेव के प्रवचन

16 जून, 1949

कर्मयोग:- कर्म बन्धन नहीं वरन कर्म बन्धनों का विच्छेदक है, यदि तीव्र निष्ठा हो। कर्म में अनासक्ति प्रधान है। दूसरे, कर्म को प्रभु के समर्पण कर दें। जो कर्म यज्ञ के निमित्त हो जाता है वह बन्धन नहीं होता। जो अपने लिये किया जाता है वह बन्धन होता है। कर्म ही 'साधन' बन गया, यह विशेषता है। अर्जुन के लिये लड़ाई ही साधन थी, अत: प्रभु ने लड़ने की आज्ञा दी।

गीता का निजी योग संन्यास नहीं है कर्म है। अर्जुन ने अन्त में कहा – **'नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा'।** उसने युद्ध को भगवान का निर्देश समझ कर स्वीकार किया। भगवान के प्रति निष्ठा का फल यह हुआ कि जो कर्म किसी के लिये रस्सी था वह चाकू बन गया।

विद्यार्थी में, आर्टिस्ट में, फल की आसक्ति भले ही न हो, कर्म में आसक्ति अवश्य हो जाती है। यह रजोगुण की प्रधानता में होता है। जब सतोगुण की वृद्धि हो जाती है तो कर्मशक्ति की कमी हो जाती है। एक दम जोश पैदा होना विकास की निम्न कोटि की स्थिति है। सन्तुलन उच्च स्थिति है।

विकास के क्रम में हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं हमारा दृष्टिकोण बदलता रहता है। एक स्थान पर जो ठीक है वही दूसरे स्थान पर बेठीक है। भीतर प्रभु से युक्त होकर उसका निर्देश प्राप्त करने की कोशिश करो। अनासक्ति भाव से, शरणागति का भाव लाने से समझ साफ होगी फिर हमारा रास्ता साफ होगा।

कर्म का बाह्य रूप निर्णायक नहीं। उसकी निष्ठा ही निर्णायक है कि वह बन्धन का कारण होगा या छुटकारे का। ईमानदारी से कर्म चुनो। उसमें निष्ठा रखो।

पहले जब किसी से झगड़ा हुआ बराबर उसकी ही बुराई सोचते रहते थे, अब अपनी ही गलती देखी और झगड़ा शान्त हुआ। आदमी चैन में हो जाता है। पशुओं के पीछे एक चेतन सत्ता है, उसी के द्वारा पृथक-पृथक रहने वाले पशु समूह में, एक सा परिवर्तन होता है। इसी तरह किसी खास जाति में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति एक खास रंग में रंगा रहता है। उसमें विशेष संस्कार होते हैं। कभी-कभी जाति के पीछे चेतना काम करती है। जैसे जर्मनों के पीछे एक चेतना ने हिटलर को जन्म दिया।

तीर्थ:– तीर्थ स्थानों पर दृष्टि है खास देवों की। इन स्थानों पर विशेष देवों का विशेष प्रभाव है। विश्वनाथ बनारस के अधिष्ठाता देव हैं। वह मन्दिर उस शक्ति का केन्द्र है। बनारस के मन्दिर में जब मैं कोने में खड़ा हुआ और 'नमामीशमीशान निर्वाणरूप' वाला स्तोत्र पढ़ने लगा, तो उससे मुझे ऐसा लगा जैसा शक्ति अवतरण के समय होता है

तभी तो नरेन्द्र नाथ ने स्वामी विवेकानन्द बन कर अपने गुरुदेव श्री रामकृष्ण परमहंस के आदेशानुसार 'दरिद्रनारायण' की सेवा का प्रवर्तन किया। देश के युवकों का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा था – 'तुम्हें अभी तक पढ़ाया गया है – **'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवोभव, पीड़ित देवो भव, आर्त देवो भव।** उन्होंने कहा था – 'सारी उपासना का सार है – पवित्र होना और दूसरों की भलाई करना। जो शिव को दीन-हीन में, दुर्बल में और रोगी में देखता है, वही वास्तव में शिव की उपासना करता है और जो शिव को केवल मूर्ति में देखता है उसकी उपासना तो केवल प्रारम्भिक है। जो मनुष्य शिव को केवल मन्दिरों में देखता है, उसकी अपेक्षा शिव उस व्यक्ति पर अधिक प्रसन्न होते हैं, जिसने बिना किसी प्रकार जाति, धर्म या सम्प्रदाय का विचार किये, एक दीन-हीन में शिव को देखते हुए उसकी सेवा और सहायता की है।

स्वामी विवेकानन्द ने सेवा की अपनी सारी प्रेरणा अपने गुरुदेव से प्राप्त की थी। श्री रामकृष्ण का जीवन ही सेवामय था, वे सही अर्थों में सेवा मूर्ति थे। अन्तिम समय में जब उन्हें गले का कैंसर हो गया था और चिकित्सकों ने उन्हें बोलने से मना किया था, तब भी वे आगत जिज्ञासुओं से वार्तालाप करना बन्द न करते। सेवकों और भक्त के अधिक निवेदन करने पर कहते, यदि एक व्यक्ति की सहायता करने के लिये मुझे बीस हजार भी जन्म लेने पड़े तो स्वीकार हैं।' ऐसा था उनका सर्वात्म भाव और सेवा परायणता!

अर्थात ऐसा लगा मानो उसके देवता ने आशीर्वाद दिया। अवस्था बदल गई। गहरा प्रभाव पड़ा।

5 जनवरी 1949 की बात है ऐसा लगा शंकर भगवान बुला रहे हैं। मैंने कहा – मैय्या! तू कुछ और खेल कराना चाहती है। तेरी इच्छा। विचित्र प्रभाव पड़ा। भीतर की अवस्था बदल गई। ऐसा लगा नाम का दान मिल रहा है। वहाँ साधन करने से नाम का दान मिलता है। साधन से शक्ति का परिपाक होता है और यदि साधक पहले से तैयार हो तो यह नाम का प्रभाव उसे कहाँ का कहाँ पहुँचा देता है। तीर्थ में गड़बड़ भी होती है परन्तु जो उस प्रभाव के क्षेत्र में, ऊँचे स्तर पर पहुँच जाता है, वह अवश्य लाभान्वित होता है।

एक ओर तीर्थ, मन्दिर और व्यक्ति विशेष का प्रभाव है दूसरी ओर साधक की ग्रहणशीलता है। साधक में जितनी ग्रहणशीलता होती है उतना ग्रहण कर पाता है।

जाप का प्रभाव:– जब हम भजन करते हैं तो अनजाने में भी ऊँची चेतना उतर कर हमारी बुद्धि को ही नहीं, हृदय को भी प्रभावित करती है। वह इतनी स्थिर होती है कि हलचल नहीं होती। जब हमारा हृदय उससे युक्त हो जाता है तो ऊँची चेतना की समता उसमें बस जाती है, तब सुख-दु:ख का पहले का सा प्रभाव नहीं पड़ता। फिर हम चाहें तब भी पहले का सा प्रभाव नहीं पड़ता।

शरीर में जो हृदय का केन्द्र है वह विषाद और हर्ष का केन्द्र है। उससे बहती हुई धारायें हृदय को प्रभावित करती हैं। नाम स्मरण द्वारा शक्ति जाग्रत होती है और मनुष्य कुछ का कुछ बन जाता है।

शुरू में दिमाग बहुत सोचता है यह होगा वह होगा। फिर गम्भीरता आ जाती है और आदमी झंझट में नहीं पड़ता। बात सामने आई और भीतर की स्फूर्ति वह काम कर देगी जो पहले नहीं होता था। कल्पना की शक्ति ठण्डी पड़ जाती है, तर्क का स्थान अन्त:स्फूर्ति ले लेती है।

सोने का नया जेवर बनवाना चाहें, तो पहले वाले जेवर को निकालना पड़ेगा।

परिस्थिति बदले या न बदले, हमें बदलना चाहिये। अपना दृष्टिकोण बदल जाये। उस प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये। वह हमारा सब कुछ बदल सकता है। उस पर विश्वास करो। अपने को ढीला छोड़ दो। वह तेजी से बदल देगा। आप बदलेंगे तो आपकी परिस्थिति अवश्य बदल जायेगी। हमारा दिल – हमारे विचार बदलने से व्यवहार भी बदल जायेगा। जितनी बड़ी परेशानी उतनी ही बड़ी साधना भी होती है।

17 जून, 1949

गीता के अध्याय 12 के श्लोक 18 व 19:–

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥

समताः–

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

की व्याख्या करते हुए स्वामी जी ने कहा –

समता के मूल में समान रूप से हितचिन्तन है। जिसका जिसमें हित है उसके लिये वही व्यवहार समता है। जिन विशेष आन्तरिक तत्त्वों से शरीर बना है वे दो व्यक्तियों में एक से नहीं होते। भगवान सबके लिये सम हैं, फिर भी बाहरी विषमता दिखाई देती है। बाहरी विषमता आन्तरिक विषमता की द्योतक नहीं। समता को समझना कठिन है। कुछ लोगों के प्रति बाहरी समता का व्यवहार करते हुए भी आन्तरिक विषमता रहती है। सम व्यक्तियों को पहचानने के लिये अपने अन्दर समता होनी चाहिये। सन्तों को पहचानने के लिये सन्त होना चाहिये।

द्वेष हमारे विकास का कांटा है। हमारा शत्रु है। यह पहले समझ लो, दिमाग साफ कर लो। शान्ति और चैन के रास्ते की मांग है कि द्वेष कहीं नहीं हो। घृणा के बदले में प्रेम हो। ठुकराने के बदले में ठुकराने की बात न हो।

– श्री जयनारायण पारीक जी

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक का विवरण

साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक दिनांक 28 अप्रैल 2021 को वेबिनार के माध्यम से आयोजित की गई जिसमें निम्नलिखित सदस्य उपस्थित रहे –

1. श्रीमती रमन सेखड़ी, अध्यक्षा
2. श्री विजयेन्द्र (विजय) भण्डारी, सचिव
3. डा. पद्मा शुक्ल, उपाध्यक्षा
4. श्री विष्णु कुमार गोयल, सह-सचिव
5. श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री, कोषाध्यक्ष
6. श्रीमती कृष्णा भण्डारी
7. श्रीमती सुशीला जायसवाल
8. श्रीमती कमला वर्मा
9. श्री अनिल मित्तल
10. श्री रमेश चन्द्र गुप्त
11. श्री सुधीर कान्त
12. श्री जितेन्द्र चौहान
13. श्री सुभाष ग्रोवर
14. श्री पुरन्दर तिवारी (आमन्त्रित)

वन्दना के पश्चात सर्वप्रथम पिछली बैठक के पश्चात् नश्वर देह को त्यागकर गोलोकवासी हुए साधकों को श्रद्धांजलि दी गई तथा दो मिनट का मौन धारण करके उन आत्माओं की शान्ति के लिये गुरु महाराज से प्रार्थना की गई। तत्पश्चात, अध्यक्षा जी ने परिस्थितिवश यह बैठक 'जूम' पर करने की विवशता बताते हुए कार्यवाही आरम्भ करने की अनुमति प्रदान की।

सचिव महोदय ने बताया कि बैठक का मुख्य उद्देश्य इस विषय पर विचार विमर्श करना है कि कोरोना महामारी द्वारा उपस्थित संकट की इस घड़ी में साधना परिवार के सदस्यों के एक दूसरे के प्रति तथा समाज के प्रति क्या कर्तव्य हैं।

उपस्थित सदस्यों ने अपना-अपना मत प्रकट किया। अन्त में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये –

1. सभी साधक अपने पास-पड़ोस में रहने वाले या सम्पर्क में आने वाले जिस व्यक्ति को जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो उसकी पूर्ति तन, मन, धन से करें।
2. यदि किसी भी साधक को किसी भी स्थान पर आर्थिक सहायता की आवश्यकता हो तो तुरन्त वांछित सहायता उपलब्ध कराई जाये। इसके लिए सहयोग के इच्छुक साधक अपनी श्रद्धानुसार एक राशि की घोषणा कर दें जो मांग आने पर प्रेषित कर दी जाये। सहायता की राशि निम्नलिखित साधकों के माध्यम से उपलब्ध हो सकेगी –
   1. श्री पुरन्दर तिवारी
   2. श्रीमती रमन सेखड़ी
   3. श्री विष्णु कुमार गोयल

   कोई भी साधक भाई बहन आवश्यकता पड़ने पर उपरोक्त में से किसी को भी सम्पर्क कर सकते हैं। ये साधक दानदाताओं में से अपने विवेकानुसार किसी भी साधक से सहायता के लिए कह सकते हैं।

गुरु महाराज तथा उपस्थित सदस्यों का धन्यवाद करते हुए अध्यक्षा जी ने मन्त्र के साथ बैठक की पूर्ति की।

(उपरोक्त रिपोर्ट के संकलित होने तक साधकों से लगभग 4,50,000/- रुपये की संकल्पित राशि की घोषणायें प्राप्त हो चुकी हैं।)

कोरोना काल की गतिविधियाँ

यह तो वास्तविकता ही है कि हानि-लाभ, जीवन-मरण आदि सब विधाता के हाथ में है। संसार में जो कुछ भी घट रहा है सब उस सर्वशक्तिमान की योजना के अनुसार है। उसके विधान को स्वीकार करते हुए साधना परिवार के सदस्यों ने इस आपदा काल को सुअवसर मानकर गुरु महाराज की कृपा से इसका भरपूर सदुपयोग करने की चेष्टा की है।

कुछ साधक भाई बहनों के प्रयास और पहल के परिणामस्वरूप साधना परिवार के लगभग 250 सदस्य सम्पूर्ण कोरोना काल में वाट्सएप के माध्यम से आपस में जुड़े रहे जिसमें प्रतिदिन गुरु महाराज की शिक्षाओं पर आधारित प्रवचन, विचार-विमर्श, भजन और उनके साहित्य का अध्ययन होता रहा है।

संयोगवश 'विचार मंच' नाम से वाट्सएप का ग्रुप बनाकर श्री पुरन्दर तिवारी पहले ही साधना परिवार को जोड़ चुके थे जिसके कारण ऊपर बताये गये कार्य सुविधापूर्वक हो पाये। इसी ग्रुप के कारण लॉक डाउन आरम्भ होते ही 22 मार्च 2020 को ही सामूहिक अखण्ड जाप का आयोजन कर दिया गया। सक्रिय साधकों के प्रयास से यह जाप 2 मई तक चौबीसों घंटे सतत चलता रहा जिसमें लगभग 150 साधकों ने स्वयं अपनी ड्यूटियाँ लगाईं।

उसके पश्चात् निर्वाण दिवस शिविर भी विधिवत् सम्पन्न किया गया जो 15 अप्रैल 2020 को गंगा के तट पर गुरुदेव को श्रद्धांजलि देने से आरम्भ हुआ था। यही नहीं, वर्ष 2020 के गुरु पूर्णिमा शिविर तथा जन्म दिवस शिविर भी ऑनलाइन सोत्साह सम्पन्न किये गये।

इसी अवधि में साधक तरुण गुप्त ने sadhnaparivar.in नाम से साधना परिवार की वेबसाइट बनाकर परिवार को अनमोल उपहार भेंट किया जिसमें गुरुदेव का साहित्य यथासम्भव अपलोड कर दिया गया तथा परिवार के बारे में बहुत सी जानकारियाँ भी उपलब्ध करवाईं।

इसके अतिरिक्त ज़ूम के माध्यम से प्रत्येक मंगलवार व प्रत्येक माह के दूसरे व चौथे रविवार को 40 मिनट की अवधि की मीटिंग होती है जिसमें पूर्व निर्धारित वक्ता अपना प्रवचन करते हैं और सत्र के अन्त में श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं।

साधना परिवार की महान विभूतियाँ जो आज हमारे बीच नहीं रहे, उनके योगदान और उनके संस्मरण उनके समकालीन साधकों द्वारा वर्णित किए जाते हैं।

गुरु महाराज की प्रसिद्ध कृति 'गीता विमर्श' का ध्वनिकरण करके 253 भागों में विचार मंच पर प्रसारित किया गया है।

इस प्रकार आज अपने-अपने घर पर रहकर ही सत्संग करते हुए साधकगण हर घर को आश्रम बनाने के गुरुदेव के सपने को साकार कर रहे हैं।

– साधना परिवार

दिगोली शिविर-2021

सन् 2020 में आई कोरोना महामारी के नाते 2021 मार्च में गुरुदेव जी की सूक्ष्म अध्यक्षता में दिगोली का शिविर सम्पन्न हुआ।

इस शिविर में लगभग 40 साधक सम्मिलित हुए। रात्रि को अखण्ड जाप आरम्भ होता और दूसरे दिन सुबह उसकी पूर्ति होती थी, जिसमें सभी साधकों ने बहुत ही उत्साह से भाग लिया। दिन में 3:00 बजे से 5:00 बजे तक संकीर्तन होता था जिसमें गाँव की महिलायें और बच्चे भी शामिल होते थे। उनके द्वारा गाये गये मधुर भजनों ने शिविर का आनन्द और भी बढ़ा दिया।

शिविर में योगासन सिखाने के लिये 135 देशों की यात्रा कर चुके एक योगाचार्य भी पधारे।

शिविर की पूर्ति के एक दिन पहले भण्डारा हुआ जिसमें बाडेछिना स्थित स्कूल के बच्चे आए। उनको भोजन के पश्चात उपहार भी दिये गये। उन बच्चों ने भी बड़े ही मीठे स्वर में भजन गाये।

इस प्रकार तीन रात्रि के शिविर का समापन हुआ और सभी साधकों ने अत्यधिक आनन्द का अनुभव किया।

इसी अवधि में दिगोली साधना स्थली के बराबर में जो देवी का मन्दिर है उसका साधना परिवार ने रंग, रोगन, टाइल्स आदि लगवा कर राजस्थान से मँगवा कर नई मूर्ति स्थापित करवा कर सम्पूर्ण रूपान्तर करवा दिया।

सभी साधक हर पल महाराज जी की कृपा का अनुभव करते हुए अपने-अपने निज निवास को लौट गये।

– अरुणा पाण्डे

श्री गुरु पूर्णिमा साधना शिविर - सूचना

कोविद-19 महामारी के चलते जुलाई माह में आयोजित होने वाले गुरु पूर्णिमा साधना शिविर के आयोजन की तिथि अभी निर्धारित नहीं की गई हैं। जिसकी सूचना 'विचार मंच' नामक वाट्सएप ग्रुप तथा फेसबुक पर यथासमय दे दी जायेगी। शिविर का सीधा प्रसारण Zoom तथा Facebook पर भी किया जा सकता है। साधक इसका लाभ अपने घर पर ही उठा सकते हैं।

श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2021
14 से 21 अप्रैल 2021

गुरु महाराज के निर्वाण दिवस पर साधना धाम हरिद्वार में प्रति वर्ष शिविर का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष कोरोना महामारी के कारण शिविर का आयोजन 15 अप्रैल 2021 से 21 अप्रैल 2021 तक ऑनलाइन किया गया जिसमें लगभग 250 साधक भाई-बहनों ने अपने-अपने निवास स्थान से ही भाग लिया। सारे कार्यक्रम विधिवत् सम्पन्न किये गये। पहले दिन रामचरितमानस का अखण्ड जाप हरिद्वार में ही उपस्थित साधकों द्वारा किया गया। 15 अप्रैल को प्रात. 6:00 बजे गंगा जी के घाट पर गुरुदेव को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। इसके पश्चात् रिकार्ड की गई श्रद्धांजलियाँ साधकों ने अपने-अपने मोबाइल फोन पर सुनीं। फिर प्रतिदिन पूर्ति पर्यन्त यथावत् कार्यक्रम हुए, जैसे कि प्रात:कालीन सत्र में गीता पाठ, गीता पर प्रवचन, अपराह्न में भजन व व्यावहारिक साधना, रात्रि में विनोद गोष्ठी का आनन्द। अखण्ड जाप भी सायं 7:00 बजे से 8:00 बजे तक सामूहिक जाप के पश्चात् पूरी रात की ड्यूटियाँ लगा कर किया गया जो प्रात: 5:00 बजे से 6:00 बजे के सामूहिक जाप तक चलता रहता था।

शिविर की अवधि में जो प्रवचन व भजन प्रसारित किये गये उनमें से लिखित रूप में जो प्राप्त हो सके वे यहाँ प्रकाशित किये जा रहे है।

प्रवचन सार

श्री विजयेन्द्र (विजय) भण्डारी जी

साधना - लक्ष्य और प्राप्ति

साधक का लक्ष्य क्या है? परमसत्ता जिसे श्री गुरुदेव महाराज परम तत्त्व, परम चैतन्य भी कहते हैं, उसकी प्राप्ति। हम उसके अंश हैं। इसलिये सर्वप्रथम हमें अपने आप को जानना है और इसके लिये स्वयं के भीतर पैठना है। जब हम ऐसी यात्रा पर निकलते हैं जिसके क्षेत्र का हमें ज्ञान नहीं होता तो हम क्या करते हैं? हम ऐसे पथ-प्रदर्शकों की खोज करते हैं जिन्हें मार्ग का ज्ञान होता है, जो क्षेत्र की पहचान रखते हैं, जो लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं। पथ-प्रदर्शक भी ऐसे लोगों की खोज में रहते हैं जिन्हें उनके द्वारा अनुभूत लक्ष्य को पाने की चाह होती है। वे उन्हें गन्तव्य की सुन्दरता और सम्भावनाओं के विषय में जागरूक भी करते हैं। अध्यात्म पथ के पथिकों को भी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है जिसे 'गुरु' का नाम दिया गया है।

हम बड़भागी हैं कि हमें श्रद्धेय स्वामी श्री रामानन्द जी महाराज ने पथ दर्शाने के लिये चुना है। उनके जैसा सच्चा सन्त, निर्मल व्यक्ति गुरु के रूप में पाकर हम धन्य हो गये।

यह सही है कि मार्ग तो राही को ही चलना है। पथ-प्रदर्शक तो उसे पथ में आने वाली बाधाओं से परिचित करा सकता है कि जिससे पथिक का सुन्दर लक्ष्य उसे अवश्य मिले। कहाँ बाधायें हैं, कैसे उनसे पार पाया जा सकता है, इन बातों के पूर्वज्ञान से पथिक बिना घबराये, बिना भटके लक्ष्य की ओर शीघ्रता से बढ़ सकता है। 'स्व' का दर्शन, प्रभु प्राप्ति साधारण पहाड़ियों की चढ़ाई नहीं है। गुरुदेव ने एक कविता में इसके विषय में खूब लिखा है –

ऐ पथगामी!
पग धीरे-धीरे धरना!
विषम भूमि, अपरिचित मग में,
सोच समझ कर चलना!

ऊँचे में है,
और ऊँचे से ऊँचे में है,
दूर, दूर अति दूर लक्ष्य तो दूरी में है,
पर न मचलना, व्याकुल होना,
धीरज धर, धीरे से चलना!
प्यारे, पहचान!
जीवन के धन को,
आगे ले जाने वाले अमृतपन को,
पराशक्ति के अवलम्बन को,
मग में न अटकना!
ऐ पथगामी!
पग धीरे-धीरे धरना!

जीवन के अनन्त सफर में अनेक जन्मों में हमने बहुत सा बोझा कर्मों विकर्मों का अपने ऊपर लाद रखा है जिसे हम आदतवश ढोते चले जा रहे हैं, हमें आभास तक नहीं कि हम बोझा ढो रहे हैं। लेकिन जब हमें गुरु रूपी पथ-प्रदर्शक मिल जाता है और हम अध्यात्म पथ के पथिक बनते हैं तो हमें यत्न करना है कि हम पुरानी आदतों को, संस्कारों की गुलामी को छोड़ पायें, एक नया तरीका अपनायें विशेषकर अपने दृष्टिकोण में।

दृष्टिकोण में एक ही बदलाव आमूलचूल परिवर्तन ला सकता है – अपने जीवन की सम्पूर्ण क्रियाकलापों को हम प्रभु की पूजा मानें तो हमारे आध्यात्मिक जीवन का शुभारम्भ हो गया। प्राय: आध्यात्मिक साधना के दो मार्ग कहे जाते हैं एक आरोह का मार्ग, दूसरा अवरोह का मार्ग।

दोनों का लक्ष्य प्रभु प्राप्ति है जो दोनों मार्गों पर चलने वालों के लिये सम्भव है। आपको अधिकतर ऐसे गुरु सन्त बहुत से मिलेंगे जिन्होंने लक्ष्य प्राप्ति तो क्या करना, उस ओर मुँह तक नहीं किया। हाँ, वे भी मिलेंगे जो चले अवश्य लेकिन बीच में ही भटक गये। लेकिन हमारा अहोभाग्य हमें वह गुरु मिले जो अपने लक्ष्य से एकाकार हो चुके हैं। लक्ष्य की दिशा वे दिखा रहे हैं लेकिन उनकी बातों को हमें हृदय में बसाना होगा, कर्मों में उतारना होगा अध्यात्म के मार्ग में पग आगे बढ़ाने के लिये।

इस मार्ग में चलने के लिये अपने अन्दर कुछ तैयारी करनी होगी। कुछ आधारभूत गुणों को अपने अन्दर समाहित करना होगा। सबसे पहली आवश्यकता है तीव्र इच्छा, अभीप्सा, लक्ष्य की प्राप्ति की। इसे पुकार भी कहा गया है। हमें जीवन के रहस्य को जानने की तीव्र इच्छा होना आवश्यक है। साधारण व्यक्ति को धन दौलत, ऐश्वर्य से बढ़कर कुछ नहीं चाहिये। तभी जागृति आती है जब इसे यह सब कुछ पाकर भी कुछ कमी लगने लगती है। लेकिन ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं। कुछ लोग सब कुछ खोकर इधर का रुख करते हैं।

हमने दृष्टिकोण बदलने की बात की थी। मैं शरीर हूँ की बजाय 'मैं आत्मा हूँ' का दृष्टिकोण अपनाना होता है। इसके लिये विचारों और कर्मों में शुद्धता लानी होती है। यह एक शनै:शनै:, धीरे-धीरे होने वाली प्रक्रिया है लेकिन कइयों को यह स्वभाव से प्राप्त होने वाली अवस्था है। यह उनके पूर्व के जन्मों की कमाई का परिणाम होता है अथवा इस जन्म के कर्मों का। ऐसे लोग साहस करके अनिश्चितताओं के गहरे समुद्र में अपनी नाव का लंगर खोल देते हैं। सर्वोच्च सत्ता के साथ युक्त होने की उनकी तीव्र लगन उनकी दृष्टि में अन्य सभी ऐश्वर्यों को बौना कर देती है। फिर भी इस अन्वेषक साधक को सन्तुलित रहना होता है और एक पूर्णरूपेण साधारण व्यक्ति की भाँति व्यवहार करना होता है। अपने पथ-प्रदर्शक गुरु महाराज के निर्देशानुसार, उनके वचनों के मुताबिक अपने मन को नियन्त्रित करना और साधना में उन गतिविधियों में लगाना होता है जिनसे उसके अन्तर के पट खुलें।

उसे एकान्त में अथवा अपने जैसे अन्य साधकों के साथ बैठकर गुरु के द्वारा दिये गये मन्त्र का निष्ठापूर्वक जप करने के लिये बैठना होता है। यह साधारण सा दिखने वाला शब्द गुरु मन्त्र, गुरु के

द्वारा शक्ति प्राप्त होने से धीरे-धीरे परन्तु निश्चय ही शिष्य की आन्तरिक शक्तियों को जगाने, उसके मलों-विकारों को निकालकर बाहर करने की प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाता है और उसे पूर्ण ज्ञान, व समाधि चेतना की ओर लिये चलता है। जागरण होता है प्रेम का – एक धारा सी बहने लगती है जो समय पाकर विस्तृत होती चली जाती है और घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि नकारात्मक दुर्गुणों को बहाती, दूर करती चली जाती है। यहाँ तक कि व्यक्ति स्वयं भी आश्चर्यचकित हो सकता है।

कभी-कभी लहरों के थपेड़ों से यह गन्दगी उछाल मारती है। ऐसे समय में गुरु सचेत करते हैं कि यह आह्वान है तुम्हारे लिये कि इनको पकड़े नहीं रहो, वरन इन्हें अलविदा कर मुक्त हो जाओ। जब हम अपनी दुर्बलताओं (कमजोरियों) के विषय में सचेत हो जाते हैं तो इन्हें दूर करने में भी तत्पर हो जाते हैं, प्रभु कृपा, गुरु कृपा से सक्षम हो जाते हैं। गुरु बताते हैं कि तुम उस सच्चिदानन्द परम तत्त्व के अंश हो। तुम इन दुर्बलताओं से अधिक शक्तिमान हो। गुरुदेव बताते हैं कि ये नकारात्मक वृत्तियाँ हमारी शक्तियों का क्षरण करके हमें कमजोर बनाती हैं। अपने सकारात्मक दृष्टिकोण के सबल होने से सचेत हुआ शिष्य समय पाकर उससे मुक्त हो जाता है। यह भी सच है कि जीवन में उठने वाले झंझावात कभी-कभी व्यक्ति पर इतने हावी हो जाते हैं, वह इतने दु:खदायी होते हैं कि भोगने वाला तो क्या, उनका दर्शक भी विचलित हो उठता है। गुरु बताते हें कि यह सब हमारे पिछले कर्म संस्कारों आदि के संचित फल होते हैं जिन्हें भोगकर ही छुटकारा होता है।

हमारे सर्वसमर्थ गुरुदेव ने गीता पर अपने भाष्य (टीका) में बताया है कि कैसे गीता हमें सिखाती है उनसे निपटने अथवा बचने के उपाय। इसीलिये गुरु महाराज ने गीता को अपनी साधना का ग्रन्थ कहा है। जीवन जीने की जो कला गीता जी सिखलाती हैं उससे साधक क्रमश: धीरे-धीरे ही सही, आत्मा के ऊपर लदे बोझ को उतार फेंकने में समर्थ हो जाता है और अपने आत्म तत्त्व को प्रत्यक्ष कर पाता है, व्यक्ति का रूपान्तरण (transformation) हो जाता है। व्यक्ति में दिव्य स्वयं उतर आता है या यूँ कहें – व्यक्ति दिव्य चेतना को अपना आपा समर्पित कर देता है, सौंप देता है – भेदभाव की भावनायें तिरोहित हो जाती हैं, मिट जाती हैं सीमायें। समय आता है कि खोजी स्वयं लक्ष्य बन जाता है, साधक सिद्ध हो जाता है – The seeker becomes the sought. बूँद अपने को समुद्र में समर्पित कर स्वयं समुद्र बन जाती है। अणु सृष्टि बन जाता है। निराकार साकार हो उठता है। The drop merges to become the ocean. The atom becomes the universe. The unmanifest becomes the manifest. शंकायें तिरोहित हो जाती हैं और शान्ति सर्वत्र अधिकार जमा लेती है साधक के व्यक्तित्व पर। Doubts vanish and peace prevails. ओ३म् शान्ति!

श्री विष्णु कुमार गोयल जी

मय्यासक्तमना: पार्थ योगं युंजन्मदाश्रय:।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥

श्री भगवान बोले – हे पृथानन्दन! मुझमें आसक्त मनवाला, मेरे आश्रित होकर योग का अभ्यास करता हुआ तू मेरे जिस समग्र रूप को नि:सन्देह जिस प्रकार से जानेगा उसको (उसी प्रकार से) सुन।

मय्यासक्तमना: – मेरे में जिसका मन आसक्त हो गया है अथवा लग गया है अथवा अधिक स्नेह के कारण स्वाभाविक मेरे में लग गया उसको मेरी याद नहीं करनी पड़ती अर्थात स्वाभाविक मेरी याद आती है और विस्मृति कभी होती नहीं। ऐसे मन वाला साधक जिसे नाम की बड़ाई तथा परलोक के भोगों में किंचित मात्र भी आसक्ति नहीं है अर्थात

केवल मेरी तरफ ही झुकाव है ऐसे साधक को मय्यासक्तमनाः कहते हैं। साधक भगवान में मन कैसे लगाये जिससे वह मय्यासक्तमनाः हो जाये।

1. साधक सच्ची भावना से भगवान के लिये जब ध्यान करने बैठता है तब भगवान उसको अपना भक्त मान लेते हैं। जो केवल भगवान में मन लगाने के लिए भगवान का आश्रय लेता है, वह भगवान की कृपा से भगवान में मन वाला हो जाता है।
2. भगवान सब जगह हैं तो यहाँ भी हैं, भगवान सब समय में हैं इस समय में भी हैं, भगवान सब में हैं वह मेरे में भी हैं, भगवान सब के हैं तो मेरे भी हैं। इसलिए भगवान यहाँ हैं अभी हैं अपने में हैं और अपने हैं – इस बात को दृढता से मानते हुए प्राण में, मन में, बुद्धि में, शरीर में और कण-कण में परमात्मा हैं – इस भाव को जागृत रखते हुए नाम जप करे तो साधक बहुत जल्द ही भगवान में मन वाला हो जाता है अर्थात मय्यासक्तमनाः हो जाता है।

मदाश्रयः – जिसको केवल मेरा ही भरोसा है, मेरा ही सहारा है, मेरा ही विश्वास है और मेरे ही आश्रित रहता है वह मदाश्रयः है। जब साधक भगवान को ही सर्वोपरि मान लेता है तब भगवान में आसक्त हो जाता है और भगवान का ही आश्रय ले लेता है। उसे संसार अर्थात धन सम्पत्ति, वैभव सबका आश्रय टूट जाता है और मात्र भगवान का ही आश्रय आलम्बन सहारा लेता है। इसी को मदाश्रयः कहते हैं। भगवान कहते हैं कि मन भी मेरे में आसक्त हो जाये और आश्रय भी मेरा हो। मन आसक्त होता है प्रेम से और प्रेम होता है अपनेपन से। साधक का यह भाव जागृत हो जाये कि जब मेरे दयालु प्रभु का मुझ पर इतना अपनापन है तो मेरे को किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि की किंचित मात्र भी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार भगवान पर आश्रित रहना मदाश्रयः होना है।

योगं युंजन् – भगवान के साथ स्वतः सिद्ध अखण्ड सम्बन्ध है उसको मानता हुआ तथा सिद्धि-असिद्धि में सम रहता हुआ साधक जब ध्यान कीर्तन करने में स्वाभाविक ही अटल भाव से लगा रहता है तो उसकी चेष्टा स्वाभाविक ही भगवान के अनुकूल रहती है। यही योगं युंजन् का तात्पर्य है। जब साधक भगवान में आसक्त मन वाला तथा भगवान के ही आश्रय वाला होगा तो वह भगवत सम्बन्धी अथवा संसार सम्बन्धी जो भी कार्य करता है वह सब योग ही है। तात्पर्य यह है जिसका परमात्मा से सम्बन्ध हो जाये वह पारमार्थिक कार्य करेगा, वह सब योग ही होगा। परमात्मा से वियोग हो जाये वह काम नहीं करता है।

असंशयं समग्रं माम् – जिसका मन भगवान में आसक्त हो गया और जो सर्वथा भगवान पर आश्रित हो गया और जिसने भगवान के सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया वह भगवान के समग्र रूप को जान लेता है। भगवान अपने भक्त की बात कहते-कहते थकते नहीं है या अघाते नहीं हैं। मेरा भक्त जिस इष्ट का अथवा जिस रूप में मेरी उपासना करता है, वह उस रूप का दर्शन भी कर सकता है।

यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु – यहाँ यथा पद में इस प्रकार से बताया गया है कि तू जिस प्रकार जान सके वह प्रकार भी कहूँगा। और तत् पद से बताया गया है कि जिस तथ्य को तू जान सकता है उसका मैं वर्णन करता हूँ सुन। भगवान अर्जुन के लिए विशेषता से कहते हैं कि जिस प्रकार मेरे समग्र रूप को जानेगा वह मेरे से सुन। गुरुदेव भगवान ने हमें भगवत कृपाश्रित भक्त का साधना का मार्ग दिया है। जिसमें प्रेम, समर्पण एवं स्मरण का विशेष महत्त्व है। यह भक्ति योग है। सभी ग्रन्थों में भक्ति योग नियन्ता स्वयं प्रभु भगवान हैं। इसमें कोई स्वयं करने का अहंकार शेष नहीं है। अच्छे, बुरे, विद्वान, अनाड़ी बिना पढ़ा लिखा – सभी के लिये यह मार्ग सहज में सुलभ है। स्वयं भगवान ने सभी को इस

मार्ग में स्वीकार किया।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अगर कोई दुराचारी से दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिए। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।

श्रीमती सुशीला जायसवाल जी

कृपा की जो होती न आदत तुम्हारी
तो होती प्रभु फिर क्या हालत हमारी
किये हैं बहुत पाप हमने जो जग में
फिर आते हम कैसे शरण में तुम्हारी?

तेरी ही शक्ति समाई सभी में
हलचल उसी से होती है सब में
आलोकित करे ज्ञान तेरा जगत को
उसी से परम शान्ति पद को वो पाये॥

जड़ योनि से मानव में लाकर प्रभु ने
परम धाम पाने का अवसर दिया है
कर्मयोग है साधन सिखाया सभी को
निश्चित कटेंगे बन्धन हमारे॥

श्रद्धा सुमन लेकर आये शरण में
अविचल सदा मन रहे तव चरण में
उपकार हम पर किया है तुम्हीं ने
मुझको भी रखा शरण में तुम्हारी॥

उपरोक्त पंक्तियाँ श्रीमती सुशीला जी ने 15 अप्रैल को गुरुदेव महाराज के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप लिखी थीं। फिर गीता क्लास में निम्नलिखित प्रवचन दिया जिसका आरम्भ गीता के अध्याय 9 के श्लोक 26 की व्याख्या के साथ इस प्रकार की –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयातात्मनः॥

जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल आदि (यथासाध्य प्राप्त वस्तु) को प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस मुझमें तल्लीन अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए आहार को मैं खा लेता हूँ अर्थात् स्वीकार कर लेता हूँ।

भगवान यहाँ यह बात इसलिये कह रहे हैं क्योंकि इसके पहले चर्चा हो चुकी है कि देवताओं के पूजन में तो बहुत सी सामग्री और नियमों की आवश्यकता होती है। भगवान तो अधिक बड़े हैं तो इनके पूजन में और अधिक सामग्री और नियमों की आवश्यकता होती होगी। यह बात मन में आ सकती है। इसी भ्रम को दूर करने के लिये भगवान यहाँ स्पष्ट करते हैं कि यथासाध्य वस्तु यदि कोई भक्त मुझे प्रेमपूर्वक निष्काम भाव से देता है तो मैं उसे स्वीकार कर लेता हूँ। शास्त्रों में ऐसे भक्तों के अनेक उदाहरण हैं जैसे शबरी, द्रोपदी, गजेन्द्र और रंतिदेव आदि। जीव के साथ भगवान का स्वतः स्वाभाविक अपनेपन का सम्बन्ध है इसलिये प्रभु की प्राप्ति में विधियों की मुख्यता नहीं है। प्रेम की अधिकता में भक्त को इसका ख्याल नहीं रहता कि मैं क्या दे रहा हूँ तो भगवान को भी यह ख्याल नहीं रहता कि मैं क्या खा रहा हूँ?

प्रयतात्मनः का तात्पर्य है कि जिसका अन्तःकरण भगवान में तल्लीन हो गया है। जो केवल भगवान के ही परायण है, ऐसे प्रेमी भक्त के दिये हुए उपहार को भगवान स्वयं खा लेते हैं। इस श्लोक में पदार्थों की मुख्यता नहीं है वरन् भक्त के भाव की मुख्यता है क्योंकि भगवान भाव के भूखे हैं पदार्थों के नहीं।

भाव का भूखा हूँ, भाव में ही सार है।
भाव से भजता मुझे जो, उसका बेड़ा पार है॥

भोग लगाने पर जिन वस्तुओं को भगवान स्वीकार कर लेते हैं उन वस्तुओं में विलक्षणता आ जाती है अर्थात् उन वस्तुओं में स्वाद आ जाता है, उनमें सुगन्ध आ जाती है, उनको खाने पर विलक्षण तृप्ति होती है।

मनुष्य जब पदार्थों की आहुति देते हैं तो वह यज्ञ हो जाता है, चीजों को दूसरों को देते हैं तो वह

दान कहलाता है, संयमपूर्वक अपने काम न लेने पर वह तप हो जाता है और भगवान के अर्पण करने से भगवान के साथ योग हो जाता है। इसलिये भगवान ने पाँचवें अध्याय के दसवें श्लोक में कहा है –

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

भक्त वस्तु को प्रेमपूर्वक भगवान के अर्पण करता है, किसी कामना से नहीं।

श्रीमती कमला वर्मा जी

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

आज गीता क्लास में हमारे सभी महानुभावों को मेरा राम राम। गीता में अर्जुन के मन में संशय हो जाने से वे भगवान से प्रश्न करते हैं। अध्याय 6 के श्लोक 40 में भगवान अर्जुन से कह रहे हैं –

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥

हे अर्जुन! न इस लोक में न मरणोपरान्त वहाँ उसका विनाश होता है। निश्चय ही कल्याण के लिये चेष्टा करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है।

कल्याण की चेष्टा क्या है? विकास की सामान्य गति से आगे बढ़ने की चेष्टा है। निम्न प्रकृति को जल्दी लाँघने की चेष्टा है। कल्याण है – 1. आध्यात्मिक उन्नति, 2. मोक्ष, 3. भगवान की प्राप्ति। उसी के लिये हम प्रयास करते हैं। साधक अपनी उन्नति के लिये प्रयास करता है। साधक के अन्दर बढ़ती हुई समता, शान्त होते हुए काम, क्रोध आदि विकार और विकसित होता हुआ प्रेम – यह आध्यात्मिक उन्नति का मापदण्ड है।

यदि साधक के अन्दर पहले की अपेक्षा परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता है, अधिक सुख-दुःख में वह सम रहता है तो यह समझना चाहिये कि उसकी उन्नति हो रही है।

1. प्रेम करने की योग्यता बढ़ने लगती है, वह सभी से पावन प्रेम करता है, पावन प्रेम राग-द्वेषादि विकारों से ऊपर उठा देता है – यह है आध्यात्मिक विकास।
2. **मोक्ष** – जीते जी अवगुणों से छूट जाना ही मोक्ष है। धीरे-धीरे विकारों से उसे छुटकारा मिल जाता है जब वह भगवान से जुड़ा रहता है।

अवगुण घटते धीरे-धीरे जिनकी हमें परवाह नहीं।
प्रभु प्रसाद पुष्पित होगा ही प्रभु के प्रेम समाने में॥

3. **भगवान की प्राप्ति –** जैसे-जैसे साधक विकारों से ऊपर उठता है उसमें भगवान के गुण प्रवेश कर जाते हैं। साधक राम नाम का जाप करता है, सत्संग, भजन, स्वाध्याय करता है, उसे भगवान की प्राप्ति होती चली जाती है। उसमें भगवान को प्राप्त करने की तड़प जग जाती है।

हमारे मार्ग में विशेषतायें ही विशेषतायें हैं, हानि की सम्भावना से रहित है हमारा मार्ग –

1. पतन की संभावना नहीं
2. संघर्ष का अवसर नहीं
3. रुकने की सजा नहीं
4. संयम का अभिमान नहीं
5. दुर्गति का प्रश्न नहीं

हमारी साधना जो गुरुदेव भगवान ने बतायी है बहुत ही सरल है, सहज है, कोई भी कर सकता है, लाभो लाभ की साधना है। रामचरित मानस में बताया गया है –

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू।
लोक लाहु परलोक निबाहू॥

कल्याण के लिये जो भी प्रयास करते हैं नित्य आगे ही बढ़ते चले जाते हैं। हमारा मार्ग पतन से रहित है। कोई संघर्ष नहीं है। किसी कारणवश अगर साधना रुक जाती है तो भी हम आगे ही बढ़ रहे हैं। रुकने की कोई सजा ही नहीं कि हम फिर से साधन शुरू करें ऐसा हमारे मार्ग में नहीं है। जबरदस्ती का संयम नहीं है। व्रत उपवास कर्मकाण्ड से रहित है हमारा मार्ग। हमारे मार्ग में दुर्गति तो होती ही

नहीं है। हमें तो सिर्फ अपने गुरुदेव की बातों को जीवन में उतारना है। जीवन में सभी कुछ प्रभु से ही स्वीकार करना है।

भैय्या जी का भजन है –

निज विकास के लिये जरूरी
विविध बुरी और भली अवस्था।
दे विवेक सब शान्ति बनायी
कर्म स्वतन्त्र मल भोग व्यवस्था॥

इस श्लोक में भगवान ने बताया है कि कल्याण की चेष्टा करने वाले की कभी दुर्गति तो होती ही नहीं है – इस जन्म में या मरने के बाद। हम आगे ही आगे बढ़ रहे हैं। हमें खूब राम नाम का जाप करना है, सत्संग और प्रभु की वाणी को जीवन में उतारना है – यही है कल्याण।

श्रीमती विजया माहेश्वरी जी

साधना में संकीर्तन का महत्त्व

जैसे-जैसे साधक लोग साधना-पथ में आगे बढ़ते हैं वैसे-वैसे उन्हें अपने मन में कई प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, जागृत होते हैं। जैसे **समर्पण का भाव** – इस भाव में साधक को लगता है कि मेरा सभी कुछ प्रभु भक्तों पर समर्पित कर दूँ।

विनय भाव – इस भाव में महसूस होता है कि प्रभु के चरणों में झुक जाऊँ, अपने हर कार्य को विनय प्रार्थना द्वारा प्रभु को समर्पण कर दूँ।

मातृ भाव – इस भाव में साधक अपने को प्रभु की गोद में महसूस करता है। इसमें उसे लगता है कि यह मेरी जगजननी माँ है।

विरह भाव – इसमें साधक व्याकुल हो जाता है।

किसी समय ऐसा महसूस होता है कि रोम-रोम में राम नाम की झंकार हो रही है। राम नाम का गुंजन होता हुआ महसूस करता है। इन भावों के जागृत होने पर अपने ही आप शब्द और लय बनने बनाने की चेष्टा शुरू हो जाती है।

उच्च कोटि के साधकों में यह भाव आन्तरिक मन से निकलने लगते हैं और वह अपने शब्दों और लय में कविता बनाने लगते हैं। और वही कीर्तन के रूप में प्रगट करने लगते हैं। अब बात आती है कि कीर्तन क्या है? प्रभु का स्मरण कैसे भी किया जाये अच्छा होता है। पर स्मरण में पवित्रता होनी चाहिये। उस भाव को आन्तरिक मन से पुकारा जाना चाहिये। उसे प्रभु प्राप्ति का साधन समझकर प्रभु के चरणों में उड़ेलकर, प्रभु के चरणों में लोट जाने का, उस प्रभु का हाथ अपने सिर पर महसूस होने का भाव जागृत हो। उसके नाम की सीढ़ी पर चढ़कर प्रभु को प्राप्त करने का भाव ही कीर्तन है। जप ध्यान में कीर्तन का क्या महत्त्व है? इसमें कीर्तन करने से शक्ति का प्रवाह महसूस करता है। जाप करने से पहले हम प्रभु का आहवान करते हैं, प्रभु को बुलाने के लिये। फिर कुछ पद या भजन, कीर्तन बोलते हैं। कीर्तन इन भावों को प्रबल करता है। संकीर्तन, जप, ध्यान का मुख्य स्थान है। भाव और वाणी प्रभु की देन होती हैं। उसी को चरणों में रखकर सफल होना है। इसलिये ध्यान से पहले भी कीर्तन करते हैं और बाद में संकीर्तन करते हैं यही भाव कीर्तन कहलाता है।

श्रीमती कुसुम माहेश्वरी जी

गृहस्थ और साधना – गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने के लिये गुरुदेव भगवान् ने तीन सुन्दर व सरल उपाय बताये हैं –

1. मुख-मण्डल पर मधुर मुस्कान
2. हृदय में गूँजता हुआ राम-नाम का जाप
3. हमारी बोलचाल और वार्तालाप में प्रेम की प्रचुर मात्रा

मुस्कान का मतलब है खुश रहना। प्रसन्न रहना बहुत उत्तम स्वभाव है। हँसमुख व्यक्ति, स्वयं भी हँसता है और दूसरों को भी हँसाता है। चारों ओर हँसी बिखेर कर खुशी का वातावरण बना देता है।

प्रसन्न रहने से बहुत लाभ होता है। मानसिक तनाव दूर होते हैं, प्राणों का प्रवाह स्वच्छन्द रूप से बहता रहता है। तन और मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। गृहस्थ जीवन में प्रसन्न रहना बहुत आवश्यक होता है।

जीवन में कुछ परेशानियाँ भी आती हैं जो प्रसन्न रहने में बाधा डालती हैं किन्तु जो व्यक्ति स्वयं को परिस्थितियों में ढालना सीख लेता है वह परेशान नहीं होता। वह हर हाल में प्रसन्न रहता है। वह धैर्य से काम लेता हुआ परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेता है। ऐसा व्यक्ति जीवन की सीमाओं को, अपनी व दूसरों की लाचारियों को समझता हुआ वास्तविकता को खुशी-खुशी स्वीकार करता है, नाक-भौं नहीं सिकोड़ता, सहनशील होता है। उसके लिये प्रसन्नता और सौम्यता सहज हो जाती हैं।

कभी-कभी बुद्धि के द्वारा भी विद्रोह होता है, कभी हृदय के द्वारा तो कभी प्राण चिल्लाता है। कहीं पर शरीर हमारा साथ नहीं देता; पर हम भूल जाते हैं कि हम अपने शरीर व इन्द्रियों के राजा हैं, स्वामी हैं और प्रजा के अंग यदि राजा की आज्ञा नहीं मानते तो राज्य के नियन्त्रण में ही कमी है। यदि हम अप्रसन्न हैं तो इसी अनियन्त्रण के कारण। ऐसे में स्वयं के वास्तविक स्वरूप व अपनी शक्तियों का स्मरण करना चाहिये।

भगवान की कृपा से और नाम-जप से जब महाशक्ति का अवतरण होता है तो राग-द्वेष स्वत: ही कम होते जाते हैं, बुद्धि, हृदय, प्राण, मन – सब भगवान की कृपा पर केन्द्रित हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप अन्त:करण निर्मल हो जाता है, भीतर प्रसन्नता होती है और मुखमण्डल पर प्रसन्नता परिलक्षित होती है, दु:खों की हानि हो जाती है।

गीता के दूसरे अध्याय के पैंसठवें श्लोक में भगवान ने कहा ही है –

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

जब हम भीतर से शान्त होते हैं तो सभी परिस्थितियों को प्रसाद रूप में स्वीकार करते हैं और बुद्धि स्थिर हो जाती है।

मधुर मुस्कान अधिक से अधिक समय तक बनाये रखने के लिये हमारा व्यवहार मिलने वाले व्यक्ति के स्वभाव के अनुरूप होना चाहिये –

1. पुण्यवान् व्यक्ति अर्थात् जिनके विचार भी शुभ होते हैं, कार्य भी शुभ होते हैं, प्रभु के प्रति समर्पण की भावना होती है। ऐसे व्यक्तियों से मित्रता का भाव रखना चाहिये, उनके अनुभव से लाभ उठाना चाहिये।
2. अपुण्यवान व्यक्ति को विकास के निचले सोपान पर जानकर उसके प्रति करुणा का भाव होना चाहिये।
3. सुखी लोग जो सम्पन्न हैं, योग्य हैं, कार्य-कुशल हैं, निपुण हैं, उनको देखकर हमें मुदित होना चाहिये।
4. दुखियों के प्रति उनका दु:ख कैसे दूर करें – यह भावना होनी चाहिये।

इस प्रकार सभी प्रकार के लोगों से यथायोग्य व्यवहार करने से हमारे मुखमण्डल पर मधुर मुस्कान बनी रहेगी। मुहर्रमी चेहरा हमारी साधना और आध्यात्मिक जीवन के मार्ग का बाधक है।

सुखी जीवन का दूसरा उपाय बताया है हृदय में गूँजता हुआ राम नाम का जाप। राम का नाम भीतर गूँजता रहेगा तो उससे अनेकों लाभ होते हैं, नीरसता नहीं आती, मन में उत्साह रहता है, सकारात्मक विचार आते हैं, आसक्ति और मैं पन कम होता जाता है, सेवा की भावना बढ़ती है, दिव्य भावों का उदय होता है।

सभी रसायन हम करीं नहीं नाम सम कोय।
रंजक घट में संचरे सब तन कंचन होय॥

हमारी बोलचाल में प्रेम की प्रचुर मात्रा - दूसरों से प्रेम हम तभी कर पायेंगे जब हम उनके गुणों को देखेंगे और मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा करेंगे।

दूसरों की बातों को धैर्यपूर्वक सुनना चाहिये, उनकी कमियों की, अवगुणों की अनदेखी करनी चाहिये।

श्रीमती पूजा जायसवाल जी

सतगुरु आप समर्थ हैं, सद्मार्ग के बीज।
बचाकर मिथ्या से मुझे, हरे भाव सब नीच॥

नवधा भक्ति

जब शबरी जी भगवान से मिलती हैं तो कहती हैं – हे नाथ, मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ। मैं अधम जाति की, अधमों में अधम, मन्द मति हूँ। तब भगवान कहते हैं मैं केवल भक्ति का नाता मानता हूँ। बहन आप मेरी बात सुनें और मन में धारण करें। मैं आपको नवधा भक्ति का सूत्र कहता हूँ (भगवान भक्तों को कितना मान देते हैं)। भक्त ने कहा मैं स्तुति नहीं कर सकती तो भगवान स्वयं नवधा भक्ति के सूत्र में शबरी जी की स्तुति कर रहे हैं क्योंकि अन्त में भगवान कहते हैं – **सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।**

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

जब भक्ति की शुरुआत होती है तो सबसे पहले सन्तों का संग अच्छा लगता है फिर उनके माध्यम से भगवान की कथा अच्छी लगती है भगवान को पाने की इच्छा मन में उत्पन्न होती है।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥

भगवान का प्रसंग अच्छा लगते ही तीसरी भक्ति के रूप में गुरु आते हैं जो जीव को अमानी बनाते हैं। फिर मनुष्य भगवान का गुण, कपट का त्याग कर गाने में सक्षम हो पाता है।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरंतर सज्जन धरमा॥

पाँचवीं भक्ति मुझ पर दृढ़ विश्वास करके मन्त्र का जाप और यह पाँचवा भजन सभी वेदों में प्रकाशित है। छठवीं भक्ति इन्द्रियों का दमन, शीलता, बहु-प्रकार के कर्मों से विरक्ति तथा निरन्तर सन्त पुरुषों के आचरण में लगे रहना है।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥

सातवीं भक्ति जगत में मुझे ही देखना है और सन्त को मुझ से अधिक मान देना है। जिस प्रकार माँ को उसके बच्चे अधिक प्रिय होते हैं उसी प्रकार भगवान को उनके भक्त सबसे अधिक प्रिय होते हैं। आठवीं भक्ति जो प्राप्त है उसी में सन्तुष्ट रहता है और सपने में भी पर दोष नहीं देखता।

नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥

नवीं भक्ति सरल होना अर्थात सहज होना सभी के साथ छल हीन होना और मेरा ही भरोसा होना है। ऐसा भक्त न अनुकूल परिस्थितियों में हर्षित होता है न ही प्रतिकूल में दुःखी।

अन्त में भगवान कहते हैं उक्त नवों प्रकार की भक्ति में एक भी जिसमें होगी – चाहे वह नारी हो, पुरुष हो, चर हो, अचर हो, वह मुझे अति प्रिय है और बहन आप में सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ रूप से विराजित है। भगवान हमें शबरी जी के माध्यम से भक्ति के प्रकार बता रहे हैं। इन्हें हम ध्यान से मन में धारण करें व मनन करें।

श्रीमती गीता जायसवाल जी

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अर्पण और समर्पण हमारी साधना के मूल मन्त्र हैं। जब हम सभी कार्यों को निष्काम पूर्वक करके प्रभु को अर्पण करते हैं तो हमारा जीवन सुखमय हो जाता है। संसार में, जन में, धन में हमें सुख नहीं मिलता, वह सुख क्षणिक होता है, अधिक समय के लिये नहीं और हमारी आत्मा बेचैन रहती है। सुख तो प्रभु के चरणों में लगे रहने, उनका भजन, उनकी याद, स्वाध्याय में लगे रहने से होगा। संसार में आये हैं तो सुख-दुःख, मान-अपमान, प्रेम-घृणा तो मिलती ही रहेगी। हमें विचलित नहीं होना है। ये सब हमारे विकास के लिए आवश्यक है। नाम जप ही सबसे बड़ा यज्ञ है। इस यज्ञ को करने में कुछ नहीं लगता है सहज भाव से ही हो जाता है। परमात्मा से मिलने के लिये नाम जप द्वारा तैयारी करनी होगी। कर्म का अपना कोई महत्त्व नहीं होता लेकिन प्रभु के साथ जुड़ने से उसका महत्त्व होता है जैसे 0 का कोई महत्त्व नहीं होता लेकिन संख्या के साथ जुड़ने से महत्त्व होता है।

सिद्धियाँ प्राप्त करना हमारी साधना की उन्नति का मापदण्ड नहीं है, बढ़ती हुई समता तथा शान्ति हैं – साधक का पैमाना। उसी से साधक को अपना नापतोल करते रहना चाहिये। राम नाम के जाप से स्वतः ही समता, शान्ति आती चली जाती है। हम इतने भाग्यशाली हैं हमें इतने अच्छे गुरु जी मिले हैं जो हमारा हाथ पकड़े हुए हैं। सत्संग से ज्ञान, ज्ञान से ध्यान, ध्यान से भक्ति, भक्ति से त्याग, त्याग से शान्ति आती है। प्रभु ने जो दिया है उसके लिये उसका हमेशा धन्यवाद ही करना चाहिये। किसी के दोषों को नहीं उसके गुणों को देखना चाहिये। मानव तन कर्त्तव्य पूर्ति के लिए मिला है, जीवन को साधनामय बनाना है, प्रभु को लक्ष्य बनाना है, विश्वास करना है और पुरुषार्थ करना है। भक्ति का मार्ग समर्पण का मार्ग है जब हम तृप्तात्मा हो जाते हैं तब मन, बुद्धि, प्राण भी वैसे हो जाते हैं। तब पतन की समस्या नहीं होती, संयम का अभिमान नहीं होता, रुकने की सजा नहीं होती है और हम प्रभुमय होते चले जाते हैं।

श्रीमती सुरभि जायसवाल जी

गुरुजी के बारे में क्या बताऊँ मुख से कहा नहीं जा सकता।

साधना पथ पर विश्वास और शान्ति बनाये रखना बहुत आवश्यक है। विश्वास के साथ प्रभु को अपना बना सकते हैं। उनके नजदीक आ सकते हैं। स्वामी जी हर रोज देने को तैयार रहते हैं पर हम ले नहीं पाते क्योंकि हमारे विश्वास में कमी होती है। स्वामी जी हमको कुछ न कुछ सिखाते हैं पर हम सीख नहीं पाते क्योंकि हमारे अन्दर विश्वास और धैर्य की कमी होती है। गुरु वही देता है जो हमारे प्रारब्ध में होता है। हमें सरलता के साथ उसे स्वीकार करना चाहिये।

साधना मार्ग में जरूरी है दुःख-सुख, लाभ-हानि, मान-अपमान, सब कुछ धैर्य के साथ स्वीकार करना। इसी में हमारा कल्याण है। यही साधन पथ आगे बढ़ाकर विकास में सहायक होते हैं।

श्रीमती मुकलेश जायसवाल जी

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना॥

भगवान बता रहे हैं जो मेरी शरण में आता है, जो करता है मेरे लिये करता है, प्रेम से करता है, अनन्य भाव से करता है, उसे मैं नित्य निरन्तर अपने समीप रखता हूँ, उस नित्य निरन्तर मुझमें लगे हुए को मैं योगी बना देता हूँ। मैं उसको सुलभता से प्राप्त हो जाता हूँ। भक्त केवल भगवान को ही अपना मानता है और सदा उन्हें अपने पास देखता है, इसलिए वह नित्य निरन्तर भगवान में ही लगा रहता है। जब हम भगवान में लगे रहेंगे, घर गृहस्थी

में रहते हुए भी हम कर्म करेंगे, हर समय भगवान से जुड़े रहेंगे तो कर्म हमारी पूजा हो जायेगी और ये सब आता कहाँ से है। जब हम सत्संग से जुड़े रहते हैं। सत्संग में केवल प्रेम ही बताया जाता है। जो भगवान से प्रेम करता है, भगवान उसके साथ चलते हैं। भगवान ने बताया है कि कितनी योनि बिता करके हमें मनुष्य का शरीर मिला है –

बड़े भाग मानुष तन पावा

भगवान से हमें जुड़ना है, अपने मन को प्रभु के चरणों में रखना है। हमें अपना मन ही नहीं सब कुछ भगवान के अर्पण कर देना है। जो कुछ भी हम भगवान को अर्पण करते हैं तो भगवान उस वस्तु को और बढ़ाकर हमें लौटा देते हैं। हमें जीवन भगवान की प्राप्ति के लिए मिला है, जिसमें कर्म करना आवश्यक है। कर्म करने में हमें कोई हिचक नहीं होनी चाहिये, क्योंकि कहा गया कि –

कर ते कर्म करौ विधि नाना।
मन राखउ जहाँ कृपा निधाना॥

कर्म हमारे बिल्कुल पूजा होनी चाहिये। हमें हर समय भगवान से जुड़ा होना चाहिये। जो हमें परिवार मिला है उसमें हमें रहना है और सभी में 'राम' को देखना है। कर्म हमारे बिल्कुल सुलभ हो जाते हैं जब हम सतत प्रभु से जुड़े रहते हैं क्योंकि हमारा चित्त प्रभु के चरणों में होता है। जीवन जो हमें मिला है, बड़े भाग से मिला है। हमारे भैय्या जी ने एक सुन्दर भजन लिखा है –

सुन्दर दुर्लभ देह गढ़ी
पर शिल्पी औजार नहीं।
रंग अलौकिक खिले फूल पर
भरे रंग चित्रकार नहीं॥

फूलों में हम भगवान के दर्शन कर सकते हैं क्योंकि हमारा मन प्रभु की ओर लगा है। प्रभु हमारे हैं, हम प्रभु के हैं। हममें जो भी कमियाँ हैं उन कमियों को प्रभु छाँटते हैं और इस प्रकार वह हमें प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं। जैसे माली एक पेड़ को लगाता है, पेड़ को लगाते समय उसकी काट-छाँट करता है और उसमें अच्छी तरह से प्रेम भरकर उसको सींचता है, इसी तरह हमें भी अपने को सींचना है। भगवान के चरणों में अर्पित करना है। जीवन जो मिला है वह हमें यूँ ही नहीं मिला है। यह जीवन देकर प्रभु ने हम पर बड़ी कृपा की है तो फिर ऐसे भगवान को छोड़कर कैसे जायें, क्यों जायें, किसलिए जायें? उसे भगवान का स्मरण करना ही नहीं पड़ता, क्योंकि उसके द्वारा भगवान का स्मरण स्वतः होता चला जाता है। जिस दिन साधक को ये बात समझ में आ जाये उस दिन से मृत्यु तक भगवान का स्मरण करे और जब से नींद खुले तब से लेकर गाढ़ी नींद आने तक भगवान का स्मरण करे। जब वह सोता है तब भगवान की अनुमति से सोता है। भगवान के चरणों में शीश रखकर कहता है कि आप मेरे साथ हो। इस प्रकार हमारा राम नाम खूब चलता रहता है और हमारे जीवन को सार्थक बनाता है। यह भाव हम में कहाँ से आता है – ये प्रभु की कृपा से आता है, क्योंकि मन हमने प्रभु को दे दिया है तो वह हमारे साथ हैं और हमें गिरने नहीं देते हैं। कहते हैं –

गिरने न दिया करुणानिधि ने,
गिरने से पहले थाम लिया।

कहीं अगर हमसे गलती भी हो जाती है तो करुणा निधान हमारी गलतियों को क्षमा कर देते हैं। वह हमसे सतत प्रेम करते हैं और हमारा जीवन धन्य होता चला जाता है। भगवान हमारे हृदय में वास करते हैं –

जित देखूं तित तू ही तू है,
जित देखूं तित राम ही राम है।

इस प्रकार हमें आँख बन्द करके भी भगवान के दर्शन होते हैं। हमें हर समय उनका चिन्तन करना है, उनसे जुड़े रहना है, अपनी कमियों का केवल निरीक्षण करना है और भगवान की शरण में लग जाना है क्योंकि हमारे अन्दर काम, क्रोध, अहंकार

खचाखच भरा हुआ है।

उन्होंने एक हमें सुमर्नी दे रखी है, जिससे हम हर समय राम नाम जपते रहें और उससे जुड़े रहें। अगर हम उनसे जुड़े हैं तो काम, क्रोध, अहंकार धीरे-धीरे निकलने लगते हैं, सफाई होने लगती है। हम भगवान से कहते हैं कि हमारे अन्दर बहुत कमियाँ हैं और ये कमियाँ कैसे दूर होंगी। जब हम भाव में उनके सामने बैठते हैं तो वह हमारी तरफ देखते हैं और हम उनकी तरफ। उनका हाथ हमारे सिर पर होता है। हमें ऐसा लगता है कि हमारा मन पुलकित हो गया। वह सब प्रभु की कृपा से होता है। जब तक हम प्रभु की शरण में नहीं आयेंगे तब तक कुछ मिलने वाला नहीं है। जो मनुष्य का शरीर मिला है उसे हमें बड़ा सँवारना है, अच्छे से अच्छा करना है। जब भगवान अन्दर वास करते हैं तो गन्दगी को निकाल देते हैं। हमें तो बस प्रयास करना है, भगवान से जुड़े रहना है। प्रभु की कृपा हम पर बरस रही है, बस हमको तो स्मरण करना है, उसका चिन्तन करना है। प्रभु तो हर समय कृपा ही कृपा बरसा रहे हैं। जीवन को हमें धन्य बनाना है।

श्रीमती रमन सेखड़ी जी

गुरु वन्दना के पश्चात गीता के पाँचवें अध्याय के सातवें श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की –

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

जो लोग माया और मोह से अपने मन को हटाकर एकदम अलग कर लेते हैं और अपने गुरु के आदेश से अपने मन का सारा मल धोकर शुद्ध कर लेते हैं तथा उसे बड़ी दृढ़ता से आत्मस्वरूप में स्थित कर लेते हैं जैसे लवण जब तक समुद्र में नहीं पड़ता तब तक वह समुद्र से भिन्न ही है और आकार की दृष्टि से उसके समक्ष बहुत ही छोटा, तुच्छ जान पड़ता है, पर जब वही लवण समुद्र में घुलकर उसके साथ एक हो जाता है तो वह भी समुद्र की भाँति व्यापक और अनन्त हो जाता है; वैसे ही जिसका मन संकल्प-विकल्प से निकल कर चैतन्य में मिल जाता है और उसका ही हो जाता है, ऐसे मनुष्य में कर्ता, कर्म, अन्य सब बातों का अन्त हो जाता है, तब वह सब कर्मों को करता हुआ भी सदा अकर्ता ही रहता है।

योगयुक्तः – जितेन्द्रिय, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, सर्वभूतात्म भूतात्मा – इन चार पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त जो कर्मयोगी है, उसे ही योगयुक्त कहा है।

जब तक अन्तःकरण में संसार का महत्त्व है तब तक उद्देश्य और रुचि अलग है। उद्देश्य अविनाशी परमात्मा का होता है और रुचि प्रायः नाशवान संसार के प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति की होती है। योगयुक्त वही है जिसका उद्देश्य और रुचि दोनों प्रभु में ही हो गये हैं।

उत्पन्न और नष्ट होने वाला फल बिल्कुल भी न चाहें तभी कर्मयोग होता है, कर्मयोग में फल की इच्छा तो नहीं होती पर उद्देश्य अवश्य होता है। फल उत्पन्न और नष्ट होने वाला होता है पर प्रभु नित्य रहते हैं। उत्पन्न और नष्ट होने वाली वस्तु को कर्मयोगी चाहता ही नहीं क्योंकि उसकी चाहना तो प्रभु हैं। संसार के पदार्थ, व्यक्ति उसमें बाधक होते हैं।

समता ही योग है अर्थात समता परमात्मा का ही स्वरूप है। यह समता अन्तःकरण में निरन्तर बनी रहनी चाहिये। (5/18) जिन लोगों का मन समता में स्थिर हो गया है उन लोगों ने जीवित अवस्था में ही संसार को जीत लिया है।

सर्वभूतात्माः – कर्मयोगी को सम्पूर्ण प्राणियों के साथ अपनी एकता का अनुभव हो जाता है। जैसे शरीर के किसी अंग में चोट लगने से दूसरा अंग उसकी सेवा करने के लिये सहज भाव से, किसी अभिमान के बिना, स्वतः उसमें लग जाता है ऐसे

ही कर्मयोगी दूसरों को सुख पहुँचाने, उनकी सेवा में लग जाता है।

विशुद्धात्माः – अन्त:करण की मलिनता में हेतु होते हैं – सांसारिक पदार्थों का महत्त्व। जहाँ पदार्थों का महत्त्व रहता है, वहीं उनकी कामनायें होती हैं, साधक निष्काम तभी होता है जब उसके अन्त:करण में सांसारिक पदार्थों का महत्त्व नहीं रहता, जब तक पदार्थों का महत्त्व है तब तक निष्काम नहीं हो सकता। एक प्रभु प्राप्ति का दृढ़ उद्देश्य होने से अन्त:करण जितनी जल्दी शुद्ध होता है उतनी जल्दी और किसी कारण से नहीं होता।

विजितात्माः – भगवान ने शरीर को वश में करने की बात कही है, आलस्य, प्रमाद छोड़ना होगा।

हम अपने अन्त:करण में इस विश्वास की जड़ जमा दें कि जिस कार्य के लिये प्रभु ने हमें बनाया है, उस कार्य को हम अवश्य पूरा करेंगे। हमें अपने हृदय में तिल मात्र भी सन्देह नहीं रखना है, यदि यह संशय हमारे मन के द्वारों से प्रवेश करना चाहे तो हम उसे झट से बाहर निकाल दें, यदि हमने संशय को अपने मन में स्थान दे दिया तो हम हर बात में संशय ही करते रहेंगे।

हमें यह पक्का विश्वास करना है कि हमारी अभिलाषायें पूर्ण होंगी, हमारे मनोरथ सिद्ध होंगे, हमें सफलता मिलेगी, पराजय हमारे पास नहीं आयेगी, जो कुछ भी हमारे लिये होगा वह अच्छा ही होगा। इस प्रकार आशामय विचारों का हमारे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सांसारिक उन्नति पर बहुत ही दिव्य प्रभाव पड़ेगा।

हमें अपने अन्त:करण में इस विश्वास की जड़ जमा देनी हैं कि किये गये कार्य के लिये फल की प्राप्ति तभी होती है जब अभिलाषा और दृढ़ निश्चय दोनों मिलकर खूब काम करें।

गीता अध्याय 2 का श्लोक 40 –

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

गीता अध्याय 4 का श्लोक 40 –

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

विश्वास से ही हम अपनी शक्ति को बढ़ाते हैं और अपनी योग्यता को प्राप्त कर लेते हैं। विश्वास ही हमारे अन्दर की दिव्यता के दर्शन कराता है, वह विश्वास ही है जो ईश्वर से हमारी एकता स्थापित करवाता है, यही हमारे हृदय-कपाटों को खोल देता है, यह विश्वास ही है जो अनन्त से हमें मिला देता है जिससे अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान हमें अनुभव होता है। विश्वास ही हमारी आत्म रक्षा की ध्वनि है। विश्वास एक आध्यात्मिक कार्य शक्ति है। वह एक ज्ञान है जो उतना ही सच्चा है जितना इन्द्रियों द्वारा मिला हुआ ज्ञान। श्रद्धा और विश्वास हमारे मन को ऊँचा उठाते हैं।

विश्वास से ही हमारी शक्ति का विकास होता है। विश्वास से ही हमें वह क्षमता प्राप्त होती है जिससे हम अपनी योग्यता को बढ़ा सकें। जो कोई हमारा विश्वास बढ़ाता है, वही हमारी शक्ति को बढ़ाता है। हमारे में ऊँचे दर्ज़े का आत्म-विश्वास होना चाहिये। हमें अपने विश्वास को किसी प्रकार भी ढीला या कमजोर नहीं होने देना है। जिसने अपने आत्म-विश्वास को जीता है वही आगे बढ़ पाता है। जब हमारा आत्म-विश्वास बली होगा तभी हम बड़ी सरलता से ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ चढ़ते जायेंगे।

विश्वास ही वह चीज़ है जो हमसे जोर से कहती है कि अपने लक्ष्य की ओर कदम उठाओ। वह हमारी आत्मा है, वही हमारी आध्यात्मिक दृष्टि है, वही हमारा पथ-प्रदर्शक है, वही हमारी विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त कर हमारे रास्ते को साफ करती है। जिसके हृदय में विश्वास ने जड़ पकड़ ली है। उसके आत्म-विश्वास में वह ताकत है कि हजार विपत्तियों का सामना करने पर भी विजय उसी के हाथ में होती है। जब हम दैवी सम्पदा के उत्तराधिकारी हैं, तो क्यों न हमें अपने इस जन्म-सिद्ध अधिकार पर

दृढ़तापूर्वक विश्वास हो।

हम अपने आत्म-विश्वास से बढ़कर कोई कार्य नहीं कर सकते। इसके विपरीत हमें अपने आत्म-विश्वास को अधिक से अधिक दृढ़ करना है। मानें कि हमारे में बहुत ऊँचे तक जाने की शक्ति है तो हमें उसका प्रभाव अवश्य ही अच्छा मिलेगा। हमें अपने आत्म-विश्वास में कमी नहीं आनी देनी चाहिये। इसी दिव्य शक्ति के द्वारा हम जगदात्मा से ऐक्य का दिव्यानुभव कर सकते हैं। आत्म-विश्वास हमारी दूसरी अन्य शक्तियों को भी प्रोत्साहित करता है। हमारे अन्दर आत्म-विश्वास की मात्रा जितनी अधिक होगी उतना ही हमारा सम्बन्ध अनन्त शक्ति से गहरा होता जायेगा।

जब तक व्यक्ति में संशय का लेशमात्र भी है तब तक वह अपने कार्य में सफलता नहीं पा सकता। इसके विपरीत वह मनुष्य जिसका उद्देश्य आत्म-विश्वास और अभिलाषा से भरा हुआ है, वह जब तक अपने कार्य को पूर्ण कर सफल नहीं हो जाता तब तक उसे चैन से बैठना ही दूभर लगेगा, वह हर पल उस काम को पूरा करने में ही लगा रहेगा।

हमने बन्धन से मोक्ष की यात्रा करनी है, अनेकता में एकता देखनी है।

द्वन्द्वों से मुक्त होने के लिये मोह को छोड़ना अति आवश्यक है। मोह पर प्रहार करो, उसे समझाओ। धृतराष्ट्र का मोह ही तो था जिससे इतना बड़ा महाभारत हो गया। जिसका अपनी वाणी पर संयम नहीं है वह तो न जाने कितनी गलतियाँ करता है। गंधारी बुद्धि, विवेकशील होना चाहिये। हमें परमात्मा रूपी सूत्रधार नचा रहा है। भक्ति मानव के हृदय को सरल बनाती है।

रामचरित मानस की चौपाई 7/45/2 –

सरल सुभाव न मन कुटिलाई।

जिसके ऊपर प्रभु की कृपा होती है वह अन्दर जमे हुए अहंकार के अंकुर का नाश करते हैं। किसी अच्छे काम के लिये प्रभु आपको निमित्त बना दें तो आपको अपना अहोभाग्य समझना चाहिये कि हे प्रभु इस सेवा के लिये आपने सेवा का मौका मुझे दिया –

जौं सभीत आवा सरनाईं।
रखिहउँ ताहि प्राण की नाईं॥
रामकथा सुन्दर कर तारी।
संसय बिहग उड़ावनिहारी॥

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वती जी और श्री शंकर जी की मैं वन्दना करता हूँ जिसके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।

आत्मानुभूति में स्थित हुआ पुरुष जब जगत में कर्म करता है तब वे कर्म वासना के रूप में प्रतिफल उत्पन्न नहीं करते। कर्म फलों का बन्धन केवल अहंकार ही होता है। ज्ञानी पुरुष में उसी का अभाव होने के कारण उसके द्वारा किये गये कर्म उसे बाँधते नहीं हैं, वह लिप्त नहीं होता, ऐसे पुरुष के कर्म पानी पर लकीर के समान होते हैं, और उसके चित्त पर वासना का लेप नहीं होता।

जब इस प्रकार आन्तरिक शोधन के परिणामस्वरूप यह स्थिति प्राप्त हो जाती है तभी **'कुर्वन्नपि न लिप्यते'** कर्म करता हुआ लिपायमान नहीं होता। यह स्थिति आ सकेगी।

यह कर्मयोग की सिद्धावस्था है, यह एकदम से प्राप्त नहीं होती। साधना के परिणामस्वरूप होती है। साधना तो हमारी निष्ठा पर निर्भर करती है।

❖ ❖ ❖

सुख

सभी धनवान सुखी नहीं हैं और न निर्धन ही। मध्यम वर्ग के लोग भी सुख पर अपना एकाधिकार मानने का दावा नहीं कर सकते। एक ही आर्थिक स्तर के मनुष्य भी समान मात्रा में सुखी नहीं हैं। लेकिन जीविका मात्र उपार्जन करने वाले कतिपय परिवार सुखी और सन्तुष्ट हैं। अत: सुख का आधार क्या है ? क्या यह हमारी सम्पत्ति अथवा बाहर से मिलने वाली वस्तुओं पर निर्भर करता है ? मनुष्य की यह धारणा है कि वस्तु स्थिति ऐसी ही है। यह विश्वास अनजाने ही उसके सत्त्व में धंस गया है, अन्यथा यह संसार की विलास की वस्तुओं की प्राप्ति के लिये आज की तरह पागल न रहता।

वर्तमान युग की यह सबसे बड़ी भ्रान्ति है कि सुख और भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति का सीधा सम्बन्ध है। यदि सौ रुपयों से सुख की एक इकाई खरीदी जा सकती है तो दो सौ रुपयों से ठीक उसकी दुगुनी। शक्ति में परिवर्तन सम्पत्ति के अनुसार होना माना जाता है। अत: शक्ति और सम्पत्ति के साथ-साथ सुख में भी परिवर्तन होता है। इस विचार ने मनुष्य को पागल बना दिया है। सम्पत्ति पर अधिकार के लिये खुले युद्ध ने उसे मानवता से गिरा दिया है। इस प्रकार वह उसी सुख को नष्ट कर देता है जिसके लिये वह संघर्ष करता है। यह मानवी बुद्धि का तिरस्कार है।

मनुष्य का सुख लाभों पर निर्भर नहीं है और न उनके अभाव पर। यह न तो दूसरों द्वारा प्रदर्शित हमारे सम्मान पर आधारित है और न अपमान पर। आँख खोलकर चारों ओर देखने से इस तथ्य का सत्य स्पष्ट हो जायेगा। सुख का आधार न तो प्रशस्त जीवन निर्वाह है और न कष्टपूर्ण जीवन।

एक तरह से सुख इन किन्हीं बातों पर निर्भर नहीं है। यह इस बात पर निर्भर है कि अपनी परिस्थितियों के प्रति हमारी प्रतिक्रिया कैसी होती है। यह इस पर निर्भर करता है कि जीवन की स्थितियों को हम किस प्रकार स्वीकार करते हैं और दूसरों को हम क्या देने को तैयार हैं। सम्यक् स्वीकृति का अर्थ है समुचित सामंजस्य, और सुख का यही रहस्य है। इस अवस्था में हम दूसरों के हित में उच्चतम उत्सर्ग कर सकते हैं। इससे हमारे सुख की वृद्धि और हमारे उत्कर्ष की गति तीव्र होती है।

एक मनुष्य अपने धन की क्षति पर बैठा आँसू बहाता है, दूसरा इस हानि पर चिन्ता नहीं करता। वह सोचता है जो गया सो गया, आगे देखो। हो सकता है वह शीघ्र ही क्षति की मात्रा से अधिक लाभ प्राप्त कर ले और ऐसा स्थान पा ले जिसकी उसने कल्पना तक नहीं की थी। शोक करने वाला दूसरा व्यक्ति हताश होकर जन्म भर के लिये पंगु बन सकता है। मैंने ऐसे मनुष्य देखे हैं जो केवल धन की क्षति को ही नहीं, वरन् असफलता और उससे भी अधिक गम्भीर घटनाओं को प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं। यहाँ तक कि प्यारे और सगे सम्बन्धियों की मृत्यु को भी उचित ढंग से स्वीकार किया जा सकता है। दैन्य का कारण बाहरी घटनायें नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो समान परिस्थितियों में सभी एक ही तरह दुखित होते। लेकिन ऐसा नहीं होता। सुख और दु:ख का कारण हमारी मनोवृत्ति है यानि हम वस्तुओं को किस प्रकार स्वीकार करते हैं।

यह महत्त्वपूर्ण शिक्षा आपको ग्रहण करनी है। संसार को दोष देना बन्द कर दो। अपने सुख के अभाव के लिये अपने प्रारब्ध को दोषी न ठहरावें। अपनी वर्तमान स्थिति में आप सुखी हो सकते हैं। केवल उचित दृष्टिकोण रखिये। यदि आप सीखना नहीं चाहते तो कोई आप को सुखी नहीं कर सकता। उत्तम से उत्तम परिस्थिति भी आपको सुख नहीं दे सकती। अपने दु:ख के निर्माता आप स्वयं हैं। जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलिये।

क्या आप विकास में विश्वास कर सकते हैं ? क्या आप प्रभु के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं ? क्या आप विकास की अधिष्ठात्री 'भगवती माँ' में विश्वास रखते हैं ? यदि आपका विश्वास सच्चा है और आप इस विश्वास का अर्थ समझते हैं तो आप दु:खी कैसे हो सकते हैं ? तब आप प्रत्येक परिस्थिति को अपने हित के लिये ईश्वरीय विधान के अतिरिक्त और कुछ

नहीं मान सकते। प्रत्येक वस्तु का उत्तमोत्तम उपयोग आपको करना है। यदि आप ऐसा करने में समर्थ हों तो जीवन आपके लिये सुखों की एक शृंखला बन जायेगा, माँ की कृपा का अविरल प्रवाह।

आप कहेंगे कि यह शुद्ध आदर्शवाद है। नि:सन्देह यह आदर्शवाद है, क्योंकि यह माँग है आपसे अपनी दृष्टि ऊपर उठाने की। लेकिन यह व्यावहारिक आदर्शवाद है। यह आदर्शवाद वस्तुओं की सत्यता पर आधारित है। यह पूर्णतया व्यवहार-साध्य है। इसकी परीक्षा कर लें, परन्तु धैर्य के साथ।

आप कहेंगे कि शरीर में कष्ट होते हैं। हाँ यह यातनायें हैं, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन उनका प्रयोजन है, उनकी शिक्षा और उपयोगिता है। वे व्यर्थ नहीं। आप उनसे भाग नहीं सकते। तो फिर उनको यथाशक्ति अच्छी तरह क्यों न स्वीकार किया जाये ?

जितने अधिक उचित ढंग से परिस्थितियों को स्वीकार करेंगे उतना ही अधिक आप दूसरों को दे पायेंगे। यह आपके पूर्व कर्म हैं जो आपकी वर्तमान परिस्थितियों के रूप में फलित हो रहे हैं। भूतकाल में आपने जो बोया था उसे आप काट रहे हैं। विकास के दृष्टिकोण से इनका सीधा महत्त्व नहीं है। यह तो शक्ति-क्षीण बन्दूक की गोली की तरह है। वास्तविक महत्त्व की बात तो यह है कि आप दूसरों को क्या दे सकते हैं। इसी से आपका निर्माण होता है। यह आपके विकास में प्रभावी है। यदि आप प्रेम नहीं दे सकते और घृणा करते हैं तो आप अपनी क्षति कर रहे हैं। आप अपना भविष्य बिगाड़ रहे हैं। आप अपने विकास में सहायता नहीं कर रहे हैं। नकारात्मकता घातक होती है।

यदि आप प्रसन्नतापूर्वक दूसरों की सेवा नहीं कर सकते, यदि आप सेवा के अवसरों का तिरस्कार करते हैं तो यह अनिष्टकारक है। आप उन्नति के अवसरों से हाथ धो रहे हैं।

प्रेम, सेवा और त्याग के अवसर साधकों के लिये अमूल्य होते हैं। केवल हतभाग्य ही इनसे लाभ नहीं उठाते। आप जीवन में जितना अधिक दे पायेंगे उतना अधिक सुखी होंगे।

लेकिन आपको यह समझना है कि सुख जीवन का लक्ष्य नहीं है। समुचित सामंजस्य आवश्यक है। यह जीवन के सम्यक् ज्ञान से स्वत: घटित होता है। यह भावी उन्नति के लिये अनिवार्य है। समुचित सामंजस्य वस्तुत: सम्यक् जीवन की कला है। हमें जीवन का वरदान इसलिये दिया गया है कि ज्ञान और प्रेम के उच्चतर नियमों का प्रस्फुटन हो, परमात्म तत्त्व का पूर्ण विकास हो। परमानन्द की प्राप्ति में सुख कहीं पीछे छूट जाता है।

प्रसन्नता तो क्षण भर का रोमांच है। सुख हमारी आन्तरिक चेतना के ताल-बद्ध सन्तुलन की व्यापक अवस्था है। क्षणिक रोमांच का आधार कामनायें होती हैं। प्रसन्नता रूपी पहिये के तीन अरे होते हैं – कामना, उद्यम और तृप्ति। एक तृप्ति से दूसरी कामना का उदय होता है और इस प्रकार चक्र घूमता रहता है। यह अहम् की धुरी के इर्द गिर्द घूमता चला जाता है। मनुष्य कभी सन्तुष्टि नहीं पाता। क्षणिक रोमांच की तलाश में पड़े रहना नासमझी है। जीवन का प्रयोजन श्रेष्ठतर है।

जीवन की सबसे बड़ी समस्या है सामंजस्य। यह निर्भर करता है जीवन के यथार्थ ज्ञान पर, हमारी जीवन की स्वीकृति पर और हमारी प्रतिक्रिया पर। इससे हमारा सुख और दु:ख निर्धारित होता है। हम स्वयं ही सुखी और दु:खी होते हैं और मूर्खतावश दुनिया को दोष देते हैं। यह दायित्व आप स्वयं संभालिये। यदि आप इस दायित्व को वहन करेंगे तभी आप स्वयं को नये सिरे से ढाल सकेंगे और सुखी हो सकेंगे। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो आपकी सहायता दूसरा कौन कर सकता है ? अपनी सहायता स्वयं करने के प्रयत्न में यह पूर्व प्रतिबन्ध है कि आपमें उत्तरदायित्व की भावना हो। पूर्व इसके कि आप अपने विकास की गति तीव्र कर सकें आपको जीवन की कला अवश्य जाननी चाहिये।

आध्यात्मिक साधना के लिये प्रथम आधारभूत दो मौलिक पाठ हैं – सम्यक् ज्ञान और सम्यक् जीवन। इनके महत्त्व को कम न समझें। सत्य को जानें और तदनुसार जीवन यापन करें। सत्य ही से लक्ष्य की प्राप्ति सुलभ होती है।

('जीवन विकास – एक दृष्टि' से उद्धृत)

1.2.2021 से 30.4.2021 तक के दानदाताओं की सूची

साधकगण अपने दान की राशि चैक द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में जमा करवा सकते हैं।

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Bank of India, Haridwar
A/c No.: 721010110003147
I.F.S. Code: BKID0007210

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Punjab National Bank, Haridwar
A/c No.: 00112010000220
I.F.S. Code: PUNB0001110

कृपा करके जमा करवाई हुई राशि का विवरण एवं अपना नाम और पता पत्र अथवा फोन द्वारा साधना धाम कार्यालय में अवश्य सूचित करें। जिससे आपको रसीद आसानी से प्राप्त हो जायेगी।

– **विष्णु अग्रवाल,** प्रबन्धक, साधना धाम, मोबाइल: 8273494285

1. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	5100	24. श्री दक्ष खण्डेलवाल, दिल्ली	2100
2. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	5100	25. श्री सुनील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	5000
3. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	5100	26. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	5000
4. श्रीमती दिशा खण्डेलवाल, दिल्ली	3100	27. श्री अनिल मित्तल, बीसलपुर	2100
5. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	5100	28. श्री राम कृपाल कटियार, तिलहर	5100
6. श्री अनिल मित्तल, बीसलपुर	5100	29. श्री सुनील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	5000
7. श्री हरी ओम (राजेश) शर्मा, दिल्ली	11000	30. श्री शिव कुमार, बीसलपुर	2100
8. श्री प्रकाश चन्द्र लूथरा, दिल्ली	21000	31. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	5000
9. श्री सतेन्द्र नेगी, अहमदाबाद	5000	32. श्रीमती प्रवीन शर्मा, दिल्ली	2500
10. श्री विजय कुमार कंसल, बरेली	11000	33. श्री विष्णु कुमार अग्रवाल, बरेली	2100
11. श्री दिनेश कुमार, कानपुर	2100	34. श्रीमती ज्ञानवती शुक्ला, कानपुर	11000
12. श्री शरद शुक्ला, जयपुर	5100	35. श्रीमती सुधा	31000
13. श्री नितेश मोहन, बरेली	2100	36. श्री विमल सेखड़ी, दिल्ली	31000
14. श्री हरीश सोनी, गुरुग्राम	2100	37. सुशीला देवी चैरिटेबल ट्रस्ट, दिल्ली	3000000
15. श्री अजय आनन्द, गाजियाबाद	2100	38. श्रीमती तनिषा गुप्ता	5000
16. श्री सुमित अग्रवाल, बरेली	3100	39. श्री हर्ष कपूर, दिल्ली	11000
17. श्री अजय कुमार गुप्ता, रुडकी	2100	40. श्री शिवम अग्रवाल, फरीदाबाद	5100
18. श्री हरी ओम प्रकाश अग्रवाल, काशीपुर	2500	41. श्री कृष्ण सिंह राठौर	5000
19. श्री हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	5000	42. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	21000
20. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	5000	43. श्री विष्णु कुमार अग्रवाल, बरेली	3100
21. श्री विष्णु कुमार अग्रवाल, बरेली	2100	44. श्री अजय कुमार गुप्ता, रुडकी	2100
22. श्री हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	5000	45. श्रीमती सतीश खोसला, दिल्ली	21000
23. श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल, बीसलपुर	2100		

विशेष: उपरोक्त के अलावा दिगोली कुटिया की मरम्मत पर 25204 रुपये खर्च किये गये, जो कि श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल एवं श्री अनिल मित्तल जी द्वारा वहन किये गये।

आन्तर योग तथा इसका रहस्य

''जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ'' – कबीर

साधक प्रभु प्राप्ति के लिये ही अपने जीवन में महत्त्वाकांक्षा रखता है, उसे पाने के लिये ही सन्त पुरुषों तथा महात्माओं से सत्संग करता है। साधक के अन्त:स्तल की शान्त, एकान्त गुहा में आत्मा का-साधक का – अपने प्रियतम प्रभु से – कृपामयी जगज्जननी महाशक्ति माँ से, गाढ़ सम्मिलन ही आन्तर योग है अर्थात् साधक जब साधना द्वारा अपनी इन्द्रियों, मन को वश में करता हुआ, प्रभु नाम जप द्वारा वासना रहित शुद्ध चित्त को युक्त कर लेता है महाशक्ति माँ से, तब वह बाह्य सुध-बुध से परे अन्तर्जगत में रमण करता है और आनन्दमयी शक्ति की शान्त तथा दिव्य गोद में, उससे एकचित्त होकर लीन हो जाता है, अपने अहं से परे उसी में खो जाता है – अपनी ही अन्तरात्मा में भागवती चेतना से भरपूर।

क्या यह आन्तर योग प्रार्थना द्वारा होता है? प्रार्थना में तो माँग होती है – अनेक वासनाओं की पूर्ति की। विशुद्ध और दिव्य प्रेम अलग है उससे। क्या है इसकी उपयोगिता और क्या है इसका रहस्य?

पुरुषोत्तम भगवान – महाशक्ति, साधक के सदैव सन्निकट हैं। साधक के ही क्या? वह सभी के बिलकुल समीप हैं। वह भागवती चेतना अपने में पूर्ण होते हुए भी सभी प्राणियों में ओत-प्रोत हो रही है, सभी के अन्त:करण में व्याप्त है।

घर में रखी हुई वस्तु भी हम से दूर हो सकती है, यदि हम उसे जानते नहीं। हमारा बन्धु हमारे समीप रहता हुआ भी हमसे दूर हो सकता है, यदि हम उसे पहिचानते नहीं। ऐसे ही यदि हम भगवान को पहिचानते नहीं, उसकी समीपता को प्रतीत नहीं करते, यदि हमने उसे अपने हृदय में विशुद्ध स्वरूप में विद्यमान नहीं जाना और उससे कभी बात नहीं की, तो सचमुच वह हमसे बहुत दूर है। इतनी दूर कि हमारी कल्पना भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकती। यदि हमने उसे अपने भीतर नहीं खोजा, तो वह कभी मिलने का नहीं। गुरु नानकदेव जी कहते हैं –

काहे रे बन खोजन जाई?
सर्व निवासी सदा अलेपा,
तोहि संग रहा समाई॥
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है,
मुकुर मांहि जस झांई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर,
घर ही खोजो भाई॥

अत: वह पुरुषोत्तम हमारे भीतर है, वह भागवती चेतना हमारे अन्त:स्तल में आगे ही झलक रही है। हमारे ही नेत्र बाहिर की ओर आ रहे हैं। जरा भीतर दृष्टि करने पर वह मिलेगा, उसका अनुभव भीतर ही होगा।

कैसे पायें उसे? उसका चिन्तन कैसे करें? आकार अथवा स्वरूप कैसा है उसका? सभी आकार उसी के हैं, सभी स्वरूपों में वही बसता है। वह चेतना है, वह शक्ति है, वही महाशक्ति है। सबका आदि कारण वह सत्ता है। जैसा हमारा अपना स्वरूप है, वही उसका स्वरूप है। शरीर, मन, प्राण, बुद्धि – इन सबसे परे तुम्हारा जो स्वरूप है वही उसका भी है। हमारी ही शक्ति, ज्ञान तथा आनन्द, समाधि चेतना मन, प्राण तथा शरीर में प्रकाशित होती है। तुम ही इस रूप में अभिव्यक्त होते हो, परन्तु इससे परे भी हो। अपनी सत्ता की प्रतीति कौन नहीं करता? इसी प्रकार की निश्चयात्मक सत्ता की प्रतीति भागवती सत्ता की प्रतीति होती है। यही प्रतीति सम्भव है, यही विश्वास आन्तर योग का पहिला आधार है।

वह एक है, परन्तु अनेकों के अन्त:स्तल में है।

वह देश काल के बन्धन से परे है। यह सामर्थ्य चैतन्य शक्ति में है – जैसे सूर्य एक है, परन्तु उसकी किरणें एक ही समय में अनेक स्थानों में विद्यमान है। किरणें सूर्य से अलग होती हुई भी उससे अलग नहीं। बिजली की धारा एक होते हुए भी अनेक बल्बों को प्रकाशमय कर देती है। परन्तु यह एक स्थूल उदाहरण है। ऐसे ही आत्मा में भी यह सामर्थ्य है कि वह एक ही समय में अनेक स्थलों में विद्यमान हो सकती है। ज्यों-ज्यों साधक सूक्ष्म में प्रवेश करता है, उसके देशकृत बन्धन ढीले पड़ते जाते हैं। अत: यह सम्भव है कि वह एक ही समय में सभी के अन्त:स्तल में हो और हम उसे प्रतीत कर सकें। मायावादी तो उसे निर्माण तथा अनिर्वचनीय कहते हैं। उस निर्माण के प्रति व्यवहार, मिलन, प्रेम तथा आत्मदान कैसे हो सकता है? तत्त्ववेत्ता जानते हैं कि वह गुणों से परे होता हुआ भी गुणों में लीला करता है, यह सारा जगत उसी का प्रसार है। वह सभी व्यक्तियों में प्रकाशित है, सभी में रम रहा है – और सब से परे भी है। इतना होने पर भी साधक जिस भाव से उसे पुकारता है, वह उसी भाव से उत्तर देता है तथा उसी भाव में प्रकट होता है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम्'

(गीता 4/11)

उसके लिये यह सम्भव है – क्योंकि वह सभी में व्यापक जो है और सब से परे भी है। उसे जो जिस प्रेम से, जिस भाव से भजता है, वह उसी-उसी भाव से प्राप्त होता है – उसमें प्रकट होता है। भक्तों तथा सन्तों की जीवनियाँ इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हैं। यह आन्तर योग का दूसरा सिद्धान्त है।

किसी साधक को शाब्दिक प्रतीति होती है, शब्दों में उत्तर सुनाई पड़ता है तो किसी को इससे भी सूक्ष्म नि:शब्द समाधि चेतना के स्तर की झलक आती है, जो शीघ्र ही शब्दार्थ में प्रकाशित हो जाती है। शक्ति की अलौकिक क्रिया के रूप में भी कभी साधक उस ओर से होने वाली प्रतिक्रिया को प्रतीत करते हैं। परस्पर के आन्तरिक आदान-प्रदान के विशुद्ध आस्वादन सभी इसी आन्तरिक क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। केवल मात्र प्रतीतियों के स्तरों का अन्तर रहता है। कोई परा के क्षेत्र में, अर्थात् अतिचेतन के क्षेत्र में अनुभव करता है तो कोई समाधि चेतना के पश्यन्ती क्षेत्र में। कोई-कोई प्राण तथा शरीर चेतना में उस सम्मिलन को प्रतीत करता है। वैष्णव भक्तों के चरित्र सभी इसी आधार पर स्थित हैं। आन्तर योग एक विशाल लक्ष्य को लेकर प्रभु से मिलना है।

हमारी साधना का उद्देश्य ''आत्मचेतना के विकास द्वारा अतिशय दिव्य चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति है'' अर्थात् अपनी चेतना के ज्ञान द्वारा अपने भीतर उस महान और दिव्य चेतना का प्रकाश पाना है। यह अनुभव गम्य है कि महाशक्ति का अवतरण – भागवती चेतना का अवतार ही इस कार्य को सुगमता से पूर्ण कर सकता है। इस प्रवाह को हम इस आन्तरयोग के द्वारा अपने पर प्रबल रूप से प्रेरित कर सकते हैं। उस महाशक्ति का हम अपने में वेग से क्रिया करने के लिये आवाहन कर सकते हैं, अर्थात् प्रार्थना द्वारा उसे पुकार कर अपने में अवतरित कर सकते हैं, इसी उपाय से तीव्र वेग से आगे बढ़ सकते हैं। पूर्ण समर्पण करके अपने को पूरी तरह से उसे सौंप कर उसी के हाथों सहायता भी मांग सकते हैं। हम उसमें अपने को इतना मिटा दें कि व्यष्टि भाव न रहकर महाशक्ति का भाव प्रकट हो जाये। इसमें स्वार्थ नहीं बल्कि यह नि:स्वार्थ की चरम सीमा है। अत: आन्तरयोग साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

(आध्यात्मिक साधन, खण्ड-2 के आधार पर)

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

बूँद बूँद विचार

'माँ' चाहे कैसी भी क्यों न हो वह पूजनीया तथा श्रद्धा की पात्र है। उसका यदि कोई भी व्यक्ति निरादर करता है तो वह अपना निरादर करता है। 'माँ' यदि तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल कुछ कार्य करती है तो उसको अपनी ही इच्छा मानकर क्रोधित होने की अपेक्षा धैर्य एवं बुद्धि द्वारा कार्य करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। 'माँ' का अपमान कभी मत करो। कुम्भकार घड़ा बनाता है। घड़ा बनाते समय वह थपनी से ठोंक-पीट कर उसको बढ़ाता है, धूप में सुखाता है और अग्नि में तपाकर लाल कर देता है, तब कहीं जाकर उस घड़े से कुम्भकार को शीतल जल प्राप्त होता है। अन्य बहुत से व्यक्ति भी कुम्भकार द्वारा निर्मित घड़ों से शीतल जल का पान कर पिपासा शान्त कर लेते हैं। माँ हमें घड़ा बनाना चाहती है। अग्नि में तपो, परीक्षाएँ देते रहो और 'माँ' को घड़े जैसी शीतलता प्रदान करने के लिये सदैव कटिबद्ध रहो। याद रखो, जीवन एक परीक्षा है। कुम्भकार घड़ा बनाकर उसके फूटे होने या न फूटे होने का निश्चय करता है। माँ भी चाहे अनचाहे में हमारी श्रद्धा-भक्ति की परीक्षा लेती है, इसमें सन्देह नहीं! परीक्षा देते समय क्रोध करते हो तो लगता है तुम तैयार नहीं थे। अपने को तैयार करो। जीवन-रूपी परीक्षा में तुम तभी सफल हो सकते हो जब अपनी 'माँ' का आदर करोगे। माँ तुम्हारी परीक्षक है, निरीक्षक है और तुम जो कुछ हो वह सब कुछ तुम्हारी माँ है!

❖ ❖ ❖

जो माँ की कृपा को पा लेता है उसे कुछ पाने की फिर लालसा ही नहीं रहती। जगत् के समस्त आनन्दों की प्राप्ति माँ की कृपा प्राप्त होते ही स्वयं हो जाती है। पर्वतमालाओं से निकलने वाले मीठे जल से पिपासा भली भाँति शान्त हो जाती है। इस जल को कृत्रिम साधनों द्वारा शीतल करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। माँ की कृपा भी ठीक ऐसी ही है। मनुष्य की चिरकाल की अतृप्त-कामनाएँ माँ की कृपा का अवलम्ब पाकर स्वत: शान्त हो जाती हैं। उनकी पूर्ति के लिये विशेष प्रयत्न कभी नहीं करना पड़ता। 'माँ' की कृपा अद्‌भुत है। इसे पाकर अपना लौकिक-पारलौकिक जीवन सफल बनाओ। तुम्हारा कल्याण ण है।

❖ ❖ ❖

वर्षा होते देख जो आनन्द कृषक को होता है और साहूकार को जैसा आनन्द अपने देनदार को देखकर होता है उससे कहीं अधिक आनन्द माँ को अपनी सन्तान देखकर होता है। माँ आनन्दमयी है। माँ पथ-प्रदर्शक है। माँ प्रकाश-स्तम्भ है। उसके प्रकाश का उपयोग करो। जीवन में व्याप्त तम को अनावृत करने का प्रयास करते रहो। तुम्हारे दु:ख में माँ आनन्दमयी तुम्हारा साथ देगी। जीवन-पथ पर भटक जाने की स्थिति में माँ पथ-प्रदर्शक बन जायेगी। माँ अन्धे-अँधेरे का निवारण करेगी। माँ सब कुछ करेगी और इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं कि वही सब कुछ करती है। पर अपने हाथ तो बढ़ाओ। अपना समर्पण तो कर दो। माँ तो तुम्हारी प्रतीक्षा में है। माँ की अनन्य शरण में चले जाओ, फिर तुम्हारा तो बस कल्याण ही कल्याण है।

❖ ❖ ❖

जब व्यापक रूप से मूसलाधार वृष्टि होती है तो उसका प्रभाव सर्वत्र समान रूप से पड़ता है। माँ का प्रेम भी ऐसा ही है। माँ यह कभी नहीं देखती कि मेरी सन्तान निर्धन है या धनी और अज्ञानी है अथवा ज्ञानी है। वह तो बस प्रेम की वृष्टि करती है सब पर समान रूप से, बिना किसी भेदभाव के। तुम कष्टों में कुलस रहे हो तो माँ का प्रेम पाने की पात्रता स्वयं में विकसित करो। माँ के प्रेम में ऐसी अद्‌भुत शीतलता है जिससे समस्त शाप-ताप दूर भाग जाते हैं। माँ के प्रेम की अद्‌भुत शीतलता का आनन्द प्राप्त करने के लिये अपने को उसके वरद्-हस्तों में सौंप दो, फिर देखो जीवन में आनन्द ही आनन्द हो जायेगा।

❖ ❖ ❖

संसार में माँ का सम्बन्ध ही केवल ऐसा है जिसमें अमित स्नेह भरा रहता है। माँ का अपनी सन्तान के प्रति जो ममत्व भरा स्नेह बन्धन है उसके समक्ष मेरे विचार से जगत् के अन्य सब स्नेह बन्धन अति तुच्छ हैं। तनिक विचार करो – जो आभा सूर्य में है वह क्या करोड़ों दीपकों में हो सकती है। हमारी माँ तो सूर्य है। सूर्य का प्रकाश अरबों व्यक्तियों को प्रकाश देता है। माँ भी अपने अपार स्नेह को हमारे ऊपर बरसाती है। माँ द्वारा बरसाये गये स्नेह से हमारा जीवन हरा-भरा रहता है। माँ स्वयं सूख जाये पर सन्तान को प्रसन्नता से लहलहाता ही देखना चाहती है। माँ बस माँ है, सब कुछ है और अतुलनीय है; इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं।

ओ अज्ञानी! माँ का तिरस्कार करते हो तो तुम अनजाने में अपनी मृत्यु को आमन्त्रण दे डालते हो। अपने बनाने वाले के प्रति तो सब कृतज्ञ होते हैं। माँ ने तुम्हें बनाया है। तुम माँ से बने हो फिर कैसा अन्तर? कैसा तिरस्कार? इस बात को अपने हृदय में उतारो। माँ का सर्वदा आदर करो। उसे अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा समेत सच्चा प्यार दो। माँ का जहाँ एक स्वेद-बिन्दु गिरे, वहाँ अपने रक्त के सैकड़ों बिन्दु गिराने के लिये प्रति क्षण सन्नद्ध रहो। ऐसा करने में तुम्हारे जीवन-मग में ऐसे पुष्प विकसित होते रहेंगे जिनकी सौरभ-सुगन्ध से सम्पूर्ण जगत् महक उठेगा।

– श्री वाचस्पति उपाध्याय जी

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

साधक बन्धु माँ शब्द का अभिप्राय अच्छी तरह समझते हैं। वे परम पिता परमात्मा और उसकी शक्ति को 'माँ' कहकर पुकारते हैं।

❖ ❖ ❖

माँ सूक्ष्म जप और नित्य जप में क्या अन्तर है

पहले जब माला से नाम जप करती थी तब पता रहता था भजन कितना हुआ, जब माँ ने माला बन्द करा दी तब कभी तो लगता था जप चल रहा है कभी लगता नहीं चल रहा। मन में असन्तुष्टि सी बनी रहती थी। लगता था भजन छूटता जाता है। एक दिन माँ ने एक दृश्य दिखाया, माँ बहुत ऊँचाई पर खड़ी हैं मैं भी माँ के साथ खड़ी थी। मेरे हाथ में दो सुई थीं, एक सुई छोटी थी एक सुई बड़ी थी। माँ ने हाथ में धक्का मारा तो छोटी सुई नीचे गिर गयी। अब माँ कहती हैं जो सुई नीचे गिर गयी इसे देखकर बताओ सुई कहाँ है। सुई बहुत नीचे गिरी थी दिखाई नहीं दे रही थी। मैंने माँ से कहा माँ सुई दिखाई नहीं दे रही। मां बार-बार कहती सुई ध्यान से देखो। लेकिन सुई दिखाई नहीं पड़ी। माँ फिर हाथ में धक्का मारकर बड़ी सुई नीचे गिरा देती है, अब कहती है नीचे देखकर बताओ सुई कहाँ गिरी। बड़ी सुई दिखाई पड़ रही थी वो सामने ही थी। माँ से कहा माँ ये सुई तो दिखाई दे रही है, माँ कहती है ये सुई तुम्हें दिखाई पड़ी छोटी सुई क्यों नहीं दिखाई पड़ी। माँ आप बहुत ऊँचाई पर हो सुई छोटी थी इतनी नीचे गिरी इसलिये नहीं दिखाई दी दूसरी सुई बड़ी थी इसलिये दिखाई दे रही है। माँ पुनः प्रश्न करती है यदि सुई तुम्हारे हाथ में थी तुम्हारे हाथ से गिरी इसका मतलब है सुई थी। सुई गिरी लेकिन छोटी होने के कारण दिखाई नहीं पड़ी। इसका मतलब यह तो नहीं कि सुई का अस्तित्व नहीं है दिखाई न देना अलग बात है। ठीक इसी तरह जब हम नित्य माला से जप करते हैं वह जप हमें दिखाई देता है। जब यही जप सूक्ष्म में चला जाता है तब दिखाई नहीं देता। क्योंकि तुम्हारे पास सूक्ष्म दृष्टि नहीं है जो इस जप को देख सके। इसका अर्थ यह तो नहीं है जप होना बन्द हो गया था जप नहीं चल रहा हो। माला से जप करने की अपेक्षा सूक्ष्म में किया गया जप अधिक प्रभावशाली होता है। माला तो जप करने का एक साधन है। जब जप अभ्यास में आ जाता है तो धीरे-धीरे यही जप सूक्ष्म में चला जाता है। भजन करना नहीं पड़ता भजन स्वयं चलता रहता है।

नाम की जय जयकार हो
माँ भावों में एकाकार हो।
क्या अद्भुत मस्ती है इन भावों की
जहाँ क्षण क्षण गुरु की शक्ति का दीदार हो।

– सुश्री मीरा गुप्ता जी

साधना का उद्देश्य

गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी का कहना है – ''साधन पथ में प्रवृत्त होने से पूर्व जितने स्पष्ट रूप से हम साधना के उद्देश्य को समझ सकते हैं उतना ही अच्छा होगा। इसमें सन्देह नहीं कि ज्यों-ज्यों हम साधन-पथ में अग्रसर होंगे त्यों-त्यों हमारी बुद्धि विशुद्ध होती चली जायेगी और हमें उद्देश्य स्पष्टतर रूप में दीखने लगेगा परन्तु जितना हम आरम्भ में समझ सकते हैं, उतना समझने का प्रयत्न करना आवश्यक है।''

उन्होंने साधना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए आगे कहा – ''प्राय: हमारे अन्दर से एक अव्यक्त पुकार उठती है, वह किसी अभाव की सूचक है। उस अभाव को दुनिया के भोग, संसार के सौन्दर्य बुद्धि का विलास शान्त नहीं कर पाता। वह पुकार इन सब से परे की है। उसकी शान्ति और तृप्ति तो भगवान से पूर्णरूपेण ऐक्य को प्राप्त कर, अपने अन्दर छिपी हुई अपनी शक्ति, ज्ञान तथा आनन्द को जानने से ही होती है। इस प्रकार की शान्ति का प्रयत्न ही आध्यात्मिक साधना का तथ्य है। यह पुकार ही हमें साधना के लिये प्रेरित करती है।''

पहले हम यह समझ लें भगवान क्या हैं? वे विश्व के आदि कारण हैं। विश्व उनका रूप ही है; परन्तु वह इतने ही नहीं, वह इसके परे भी हैं, और विश्व का अतिक्रमण भी करते हैं। इसीलिये वह पुरुषोत्तम कहलाते हैं। प्रकृति उनकी शक्ति है; परन्तु वह उससे परे भी हैं। वह सगुण हैं, वह निर्गुण भी हैं। वही परमसत्ता हैं। भगवान से पूर्ण एकता प्राप्त करना, केवल मात्र निर्गुण तत्त्व में नहीं, वह सगुण भी हैं इसलिये सगुण से पूर्ण ऐक्य प्राप्त करना भी आवश्यक है। जो केवल पुरुषोत्तम को जानता है और उसकी महाशक्ति को नहीं जानता उसकी अनुभूति आधी ही है। जिस प्रकार भगवान अपने पद में स्थिर होते हुए भी इस विश्व की लीला करते हैं। उसी तरह भगवान से पूर्ण ऐक्य प्राप्त व्यक्ति भी सब कुछ करता हुआ भी अपने स्वरूप में स्थिर रहता है।

साधारण मनुष्य की शक्ति सीमित है उसका ज्ञान तथा आनन्द भी सीमित हैं; इसलिये इन चीजों की अधिकाधिक अभिव्यक्ति भी सीमित होगी।

आत्मा में छिपे हुए तत्त्वों में बुद्धि ही सर्वोच्च तत्त्व नहीं है। बुद्धि से परे भी एक ज्ञान है, जो हर चीज़ को हमारे सामने बड़े निराले ढंग से प्रस्तुत करता है। उस ज्ञान को समाधि ज्ञान कहते हैं। उस समय हम जिस अवस्था में होते हैं उसे तुरीयावस्था कहते हैं। साधारण रूप से मनुष्य जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था से परिचित है, तुरीयावस्था से नहीं। तुरीयावस्था योग साधन से प्राप्त होती है। इसी को समाधि ज्ञान कहते हैं। स्वामी जी का कहना है ''समाधि ज्ञान ऐक्य से प्राप्त होता है। इस अलौकिक ज्ञान शक्ति के सामने विश्व के सभी रहस्य खुल जाते हैं।''

पूर्णत्व के लिये समाधि ज्ञान ही पर्याप्त नहीं उससे भी बढ़कर जो ज्ञान है उसे महाचैतन्य के स्तर का ज्ञान कहते हैं। जब व्यक्ति में महाचैतन्य के ज्ञान की अनुभूति होने लगती है तो उसकी आत्मा सत्य संकल्प हो जाती है, लेकिन जब तक व्यक्ति अहंभाव से मुक्त नहीं होगा यह ज्ञान प्रकट नहीं होगा।

कामोपभोग अथवा रसास्वादन का आनन्द प्राण की कोटि के आनन्द हैं। हृदय का आनन्द उससे ऊपर है। आनन्द का अथाह सागर तो उससे भी ऊपर लहरा रहा है। अपने नित्यत्व की, व्यापकत्व की प्रतीति आत्मा का आनन्द है। उस शान्ति का वर्णन करने में शब्द असमर्थ हैं।

परन्तु उससे भी परे एक वर्णनातीत आनन्द है जिसमें यह शान्ति तथा स्थिरता भी है नित्यत्व और व्यापकत्व भी है। उसमें शक्ति है आत्मरति है और आत्माभिव्यक्ति भी है। वह आनन्द सारे विश्व का आलिग्न किये हुए है।

जो व्यक्ति आध्यात्मिक साधन करके अपने को

दिव्यत्व की ओर ले जाता है वह समाज को उज्ज्वल करता है और उसके साथ ही साथ अति मानुषी विकास करने वाली शक्ति को क्रियाशील कर देता है। दूसरे लोग भी उसके निर्मित पथ पर चल सकते हैं, अधिक सुगमता से। वह अनजाने में भी मनुष्य तो क्या, प्राणी मात्र के विकास को आगे ले जाने में सहायक होता है।

स्वार्थ त्याग आध्यात्मिक साधना का मूल मन्त्र है आध्यात्मिक साधन व्यक्ति के कल्याण के साथ-साथ लोक मात्र के कल्याण के लिये भी है। आध्यात्मिक साधना के पथ का पथिक दिव्यत्व को मनुष्य मात्र के समीप ले आता है।

पूर्णत्व को प्राप्त व्यक्ति तो इसी संसार को सच्चिदानन्द मय देखता है। प्रत्येक क्रिया में, प्रत्येक वस्तु में उसे अपना प्रभु ही दिखाई देता है।

भगवान से पूर्ण ऐक्य प्राप्त करना और सच्चिदानन्द की पूर्णाभिव्यक्ति दिव्य चैतन्य का अपने में पूर्णरूपेण अनुभव करना यही मंगलमय उद्देश्य है।

– श्री जयनारायण पारीक जी

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

शोक समाचार

हमारे निम्नलिखित साधकों के देह त्याग पर हमें अत्यन्त दु:ख हो रहा है। पूज्य गुरुदेव से विनम्र निवेदन है कि सभी दिवंगत आत्माओं को अपने श्री चरणों में स्थान दें तथा उनके शोक सन्तप्त परिवारों को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करें।

1. श्री विमल सेखरी (69 वर्ष), स्वर्गीय श्री ओम प्रकाश सेखड़ी के भाई – 22.04.2021
2. श्री आर.सी. मिश्रा (64 वर्ष), लखनऊ
3. श्री देस राज मेहरा (90 वर्ष), श्रीमती सुनीता दुआ के पिता जी – 20.04.2021
4. श्रीमती स्वर्ण धाम (90 वर्ष), दिल्ली – 18.03.2021
5. श्रीमती फूलवती, कानपुर – 20.04.2021
6. श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव पुत्रवधू स्वर्गीय श्री मथुरा प्रसाद, कानपुर
7. श्रीमती कंचन तिवारी धर्मपत्नी श्री देव नारायण तिवारी – 14.03.2021
8. श्री रोहित शुक्ला सुपुत्र श्रीमती दीपा शुक्ला, कानपुर – 23.01.2021
9. श्री शुभम सिंह सुपुत्र श्रीमती इंदिरा सिंह, कानपुर – 31.12.2020
10. श्रीमती ललिता मिश्रा के सुपुत्र (29 वर्ष), कानपुर
11. श्रीमती उषा देवी, सेविका, साधना धाम, हरिद्वार – 27.04.2021
12. श्री नारायण सेवक वाजपेयी, भोपाल – 30.04.2021
13. श्री अजय कुमार गुप्ता, श्रीमती शोभा गुप्ता के भाई, रुड़की
14. श्री हरि प्रकाश शुक्ला, डॉ. पद्मा शुक्ला की पुत्रवधू के मामा जी
15. श्री दीपक शुक्ला, डॉ. पद्मा शुक्ला की पुत्रवधू के मामा जी
16. श्री शानू, डॉ. पद्मा शुक्ला की पुत्रवधू के मामा जी के सुपुत्र
17. श्री मधुसूदन त्रिपाठी, डॉ. पद्मा शुक्ला की बहन के सुपुत्र
18. श्री सुनील गंगवानी (54 वर्ष), सुपुत्र श्रीमती सरोजिनी गंगवानी
19. श्रीमती उषा रस्तोगी धर्मपत्नि श्री हरीश रस्तोगी
20. श्री अमर सिंह (75 वर्ष), श्रीमती कुसुम के पति के बड़े भाई
21. श्री महेन्द्र शुक्ला, श्रीमती मिथिलेश और श्रीमती मीरा शुक्ला के भाई, कानपुर
22. श्री अशोक सक्सेना दामाद श्री सी.बी. सक्सेना, कानपुर

श्रीमती स्वर्ण धाम

पूज्य स्वामी मुक्तानन्द जी के प्रति श्रद्धांजलि

स्वामी मुक्तानन्द जी प्रति वर्ष अहमदाबाद से जुलाई माह में साधना धाम हरिद्वार में सपत्नीक आते थे और लगभग 15-20 दिन उपस्थित रहते थे। गुरु पूर्णिमा शिविर की पूर्ति होते ही नौ दिन की अवधि में साधना मन्दिर में प्रतिदिन प्रातः सायं दोनों सत्रों में आपके श्रीमुख से जो रामचरितमानस निसृत होती थी वह इतनी रोचक होती थी कि उसको सुनकर साधकों की तृप्ति ही नहीं होती थी। नौ दिन पूरे होने पर भी मन करता था कि और सुनें। पूरी रामचरितमानस उनको कण्ठस्थ थी और हर बार कोई नई बात सुनने को मिलती थी। अनेकों बार सुनी हुई कथा को सुनकर भी लगता था जैसे पहली बार सुन रहे हैं।

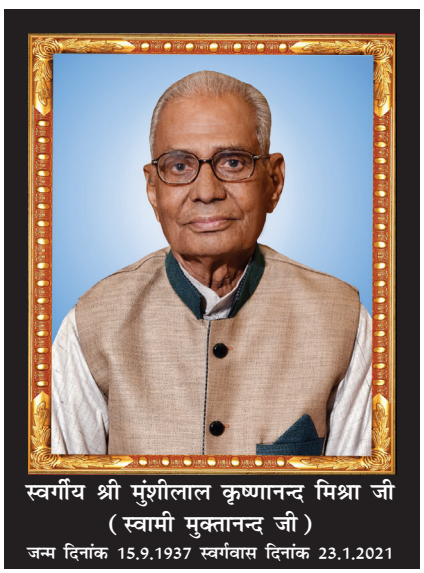

स्वर्गीय श्री मुंशीलाल कृष्णानन्द मिश्रा जी
(स्वामी मुक्तानन्द जी)
जन्म दिनांक 15.9.1937 स्वर्गवास दिनांक 23.1.2021

स्वामी मुक्तानन्द जी का जन्म 15 सितम्बर 1937 को ग्राम राजापुर, जिला कानपुर में श्री कृष्णानन्द जी मिश्र के घर हुआ था जो रामायणी थे, रामकथा में विशेष रुचि रखते थे। स्वामी जी से पूर्व की कई पीढ़ियाँ रामायणी रही हैं। इनका पूरा परिवार ही राम-भक्ति में रँगा हुआ था।

आपकी शिक्षा दीक्षा भी इसी के अनुरूप हुई – एम.ए. (संस्कृत), बी.एड., डी.पी.एड.। व्यवसाय के रूप में आप शिक्षक सिटी हाई स्कूल से आरम्भ करके खालसा इण्टर कॉलेज, अहमदाबाद में प्रधानाचार्य हुए। अहमदाबाद में रहकर आपने प्रगति इण्टर कॉलेज और प्रेरणा इण्टर कॉलेज की स्थापना की। सन् 1995 में ज्ञानदीप इण्टर कॉलेज से सेवा-निवृत्त होने के पश्चात् आप ने अयोध्या में सन् 1997 से 2020 तक प्राचार्य श्री रामकथा प्रशिक्षण केन्द्र, श्री जानकी जीवन मन्दिर का कार्यभार संभाला। इस बीच में आपका हरिद्वार और अहमदाबाद में आवागमन होता रहा।

साहित्यकार के रूप में आपके काव्य-संग्रह – पखेरू पश्चिम के, सितारे धरती के, मोती मानसरोवर के व उर्मिल सतसई प्रकाशित हुए।

आपके आध्यात्मिक गुरु रामायण के महान् पण्डित एवं विख्यात प्रवचनकर्ता व लेखक, पण्डित रामकिंकर जी उपाध्याय थे जिसकी झलक आपके रामायण-वाचन में स्पष्ट दिखाई देती थी। आपके गुरुदेव ने आपका नाम मुंशीलाल से बदल कर स्वामी मुक्तानन्द रखा था।

सादा-जीवन उच्च विचार आपके जीवन का आदर्श था जिसका दर्शन साधना-परिवार के सदस्यों ने आपके साधना धाम वास की अवधि में स्वयं किया था। कथा वाचन के अतिरिक्त आप एक साधारण साधक की भाँति रहते थे। सबके साथ बैठना उठना, साथ भोजन करना, कभी अपने ज्ञान का प्रदर्शन न करना आपका सहज स्वभाव था। प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर रामचरितमानस का पाठ करना आपकी दैनिक नियमित दिनचर्या का आवश्यक अंग था।

ऐसे महान् सन्त के सान्निध्य से अब हम साधकगण वंचित रहेंगे क्योंकि वे 23 जनवरी 2021 को इस नश्वर देह को त्याग गुरु-चरणों में लीन हो गये और छोड़ गए अपनी मधुर स्मृतियाँ और महान् कार्य। जब-जब गुरु-पूर्णिमा का शिविर होगा आपकी कमी हमें तड़पायेगी।

जय गुरुदेव, जय स्वामी मुक्तानन्द जी।

– साधना परिवार

पूज्य श्रीमती सावित्री तिवारी जी के प्रति श्रद्धांजलि

पूज्य साधिका श्रीमती सावित्री तिवारी जी ने गत् वर्ष 5 मई को शरीर त्याग कर निर्वाण प्राप्त किया था। भाई पुरन्दर तिवारी जी की पूज्य माता जी, जिन्होंने अहमदाबाद केन्द्र की स्थापना की थी, एक वरिष्ठ साधिका थीं। उन्होंने ही पुरन्दर तिवारी के रूप में अपना पुत्र रत्न साधना परिवार को भेंट किया जो माता जी के चरण चिन्हों पर चलते हुए उन्हीं के मिशन को तीव्र गति से आगे बढ़ा रहे हैं।

यहाँ प्रस्तुत हैं अहमदाबाद की वरिष्ठ साधिका श्रीमती उर्मिला सिंह के सावित्री माँ के प्रति भावपूर्ण उद्‌गार जिनको वह 'चाची जी' कहकर पुकारती थीं।

स्वर्गीय श्रीमती सावित्री जी
स्वर्गवास दिनांक 5.5.2021

प्यार भरी यादें
सारी दुनियाँ से न्यारी थीं।
कितनी अच्छी लगती थीं॥
खुदा से भी प्यारी मेरी चाची लगती थीं॥
खुदा से भी बढकर होता कोई
तो देती वह नाम तुम्हें
क्या नाम दूँ तुम्हें
तेरा हर नाम प्यारा लगता है।
खुदा से भी प्यारी मेरी चाची लगती हैं।
मेरी हर दुआ में तेरा नाम शामिल होता है।
माँगती हूँ खुदा से वह तेरा प्यार व आशीर्वाद
जो तेरे साथ मिलता था।
खुदा से भी प्यारी मेरी चाची लगती है।

हमारी पूज्यनीय एवं वन्दनीय चाची जी आज आप हमारे बीच नहीं हैं। आप हमको बिलखता हुआ छोड़कर चली गयी हो। आपके जाने से हमारी दशा वैसी ही हो गयी है जैसे शशी के बिना आकाश, जलविहीन सरिता और हमारा शरीर निष्प्राण हो गया है। चाची जी हमको ऐसा लगता है कि हम अनाथ हो गये हैं। हे मेरी प्यारी वन्दनीय व पूज्यनीय चाची जी आप हमारी केवल पथ-प्रदर्शक ही नहीं थीं आप हमारी सभी कुछ थीं – माँ, बाप, भाई, बहिन, सखा, सहोदर सभी कुछ आप ही तो थीं। आपने हमें वह दिया जो न पहले मिला और न अब मिल सकता है। आप ने हमें माँ की ममता, बाप का वात्सल्य, भाई बहिन का बल, दृढ़ता और सदपरामर्श, सेवा का उपदेश, स्वामीजी का संरक्षण, आराधक की आराधना, साधक की साधना, जीवन जीने की कला, संसार में सभी के साथ कैसा व्यवहार करना – क्या-क्या नहीं दिया।

हे मेरी पूज्यनीय चाची जी आपके सान्निध्य, आपके उपदेश, आपके स्पर्श व आपके आशीर्वाद का ही तो प्रभाव है कि ऊँची-नीची टेढ़ी-मेढ़ी कंकरीली- पथरीली पगडण्डियों में भटकने वाली मुझ जैसी निर्बुद्धि अकिंचन भी आज इस सरल और सीधे मार्ग पर चलने की कोशिश कर रही है। अपने लक्ष्य की ओर ले जाने के लिये आपने कीचड़ से निकाल कर साधना के पावन सरोवर में नहला दिया है। जबसे आप जीवन में मिलीं तो मेरा जीवन ही बदल दिया है मेरी नैया की खेवैया एक मात्र मेरा सहारा थीं। आप मेरी हर उलझन को दूर करने वाली और मेरे तन मन के कष्टों को दूर करने वाली, चिन्ता व शोक में धैर्य देने वाली थीं। आपके दिव्य व सौम्य मूर्ति के दर्शन मात्र से सभी संकट मिट जाते थे। आपके बिना चाची जी आपकी गुडिया की मम्मी दु:खी है।

आपने छुआ तो धूल को चन्दन बना दिया।
तुमने छुआ तो रेत को वन्दन बना दिया॥
जनम जो न दिया तो क्या हुआ
यशोदा माँ बन कर मुझे संवारा है।
हम क्यों घबरायें ग़म से
मुस्कराना आपने मुझे सिखाया है।

सदा आप की अपनी
अति आकुल सेविका
गुडिया की मम्मी
उर्मिला सिंह

पूज्य श्री नारायण सेवक वाजपेयी जी के प्रति श्रद्धांजलि

काल के विकराल हाथों ने गत् 30 अप्रैल 2021 को हमारे साधना परिवार से एक और वरिष्ठ साधक को छीन लिया। उनका नाम है श्री नारायण सेवक वाजपेयी जो गत चन्द वर्षों से साधना धाम हरिद्वार में रहकर साधना परिवार में प्राण फूँक रहे थे। परिवार के सभी सदस्य श्री वाजपेयी जी की ओजस्वी वाणी से प्रभावित थे। 87 वर्ष की आयु में भी उनकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत थी। रामचरितमानस व राम-कथा से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों के रोचक प्रसंग को उनको कण्ठस्थ थे, जिनको जब वह एक सधे हुए गायक की भाँति मंच से सुनाते थे तो श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे। उनकी सरलता और स्पष्टवादिता से सभी लोग परिचित थे, जिसकी प्रशंसा उनकी अनुपस्थिति में भी खूब होती थी।

स्वर्गीय श्री नारायण सेवक वाजपेयी जी
जन्म दिनांक 11.10.1933 स्वर्गवास दिनांक 30.4.2021

श्री वाजपेयी जी का जन्म 11 अक्तूबर 1933 को ग्राम जसपुरापुर सरैया, जनपद कन्नौज (तत्कालीन जपनद फर्रुखाबाद) उत्तर प्रदेश में पण्डित महेश्वरलाल वाजपेयी व श्रीमती शिवानी के घर में हुआ था। गाने का शौक उनको बचपन से ही था। हायर सैकण्डरी तक की शिक्षा पीलीभीत में अपने चाचा जी के घर सम्पन्न हुई। जब आप 13 वर्ष के थे तो स्वामी रामानन्द जी से कई बार साक्षात्कार हुआ – कभी बीसलपुर में तो कभी पीलीभीत में। डी. ए.वी. कॉलेज कानपुर से स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद एल.एल.बी. की पढ़ाई आरम्भ की किन्तु इसी बीच मध्य प्रदेश के सांख्यिकी विभाग में सरकारी नौकरी लग गई। अपनी कुशाग्र बुद्धि, निष्ठा व ईमानदारी के बल पर उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए भिण्ड, मुरैना, चम्बल जैसी कठिन पोस्टिंग से होते हुए आप जिला योजना अधिकारी के पद पर नरसिंहपुर में अन्तिम 10 वर्ष तक प्रतिष्ठित रहकर 1994 में सेवानिवृत्त हुए।

अपने जीवन में अनेकों कष्ट व पारिवारिक समस्याओं का सामना करते-करते श्री वाजपेयी एक अति अनुभवी व्यक्तित्व के रूप में सामने आये। सन् 1976 में जवान बेटे की मृत्यु से बहुत बड़ा आघात लगा। सन् 2002 में पत्नी की मृत्यु होने के पश्चात् आपने साधना धाम, हरिद्वार को ही जीवन का अन्तिम पड़ाव बनाने का निर्णय लिया जहाँ रहकर आपने गुरुभक्तों के सान्निध्य, सत्संग व गुरुदेव के साहित्य का अध्ययन करते हुए, रामायण के प्रवचन करते हुए अपने जीवन को सफल बनाया।

श्री वाजपेयी जी प्रायः कहा करते थे कि मैं जब देह-त्याग करूँगा तो न तो बिस्तार पर पड़ूँगा, न अस्पताल में रहूँगा। मरते दम तक सक्रिय रहूँगा और एकदम से चला जाऊँगा। ऐसा ही हुआ। निर्वाण दिवस शिविर में एक अविस्मरणीय आवाह्न करने के बाद इतनी शीघ्रता से गुरुधाम को प्रस्थान कर गये कि विश्वास ही नहीं होता था। ऐसी दृढ़ थी श्री वाजपेयी जी की इच्छा शक्ति। उनके रिक्त स्थान की पूर्ति निकट भविष्य में होनी कठिन है।

ऐसे साधक के प्रति सभी साधकगण नत-मस्तक होकर भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि ऐसी पवित्र आत्मा को अपने धाम में स्थान दें।

– साधना परिवार

दिगोली शिविर-2021 के अवसर पर दिगोली मन्दिर की मनोरम झाँकी (ऊपर) और साधना परिवार द्वारा रंग-रोगन कराने, टाइल्स आदि लगवाने व नई मूर्ति स्थापित कराने के बाद दिगोली साधना स्थली के बराबर वाला देवी मन्दिर (नीचे)

श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2021 के अवसर पर साधना धाम मन्दिर की मनोरम झाँकी (ऊपर) व शिविर की पूर्ति के समय साधिका मुकलेश जायसवाल, कानपुर के घर भोग लगाते गुरु भगवान (नीचे)